ग्यारहवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद भागवत का, ग्यारहवां अध्याय ग्यारहवां स्कन्ध,
जिसमें बताये बद्ध मुक्त और भक्तजनों के लक्षण ॥

श्रीकृष्ण बोले प्यारे उद्धव, आत्मा बद्ध है मुक्त है क्या। } दोहा।
सत्त्वादि गुण उपाधि से, होती है ऐसी व्यवस्था ॥ }
सभी गुण माया मूलक है, जादू के खेल के समान ही।
इसी लिए ना मेरा मोक्ष, ना तो मेरा बन्धन ही ॥
जैसे स्वप्न बुद्धि का विवर्त, आत्मा उसमें बिना बुद्धि की।
लोक मोह सुख दुख, सब मिथ्या है वैसे ही ॥

संसार का बखेड़ा उद्धव, उत्पत्ति मृत्यु शरीर की। } दोहा।
माया के कारण दिखती है, पर यह वास्तविकता नहीं ॥ }
जीव को मुक्ति का अनुभव, कराने वाली आत्म विद्या।
और बन्धन का अनुभव, कराने वाली अविद्या ॥
दोनों ही मेरी अनादि शक्ति, माया से हुई रचना इनकी।
पर उद्धव वस्तुतः इनका, कोई भी अस्तित्व नहीं ॥
जीव तो एक ही है उद्धव, वह व्यवहार के लिए ही।
मेरे अंश रूप हुआ कल्पित, वस्तुतः है मेरा स्वरूप ही ॥
आत्म ज्ञान सम्पन्न होने पर, उसे मुक्त कहते उद्धव। } दोहा।
और आत्म ज्ञान ना होने पर, वह बद्ध कहलाता उद्धव ॥ }

तुम तो स्वयं बुद्धिमान हो, उद्धव मैं फिर भी बताता।
यह अज्ञान अनादि होकर, बन्धन भी अनादि कहलाता ॥
मुझ एक ही बन्धन में जो, शोकाकुल जान पड़ते हैं।
और विरुद्ध धर्म वाले, आनन्द स्वरूप जान पड़ते हैं ॥
प्यारे उद्धव उन बद्ध मुक्त, जीव का भेद बताता हूँ। } दोहा।
साथ ही इस बारे में, एक उदाहरण सुनाता हूँ ॥ }
प्यारे उद्धव सुनो ध्यान से, ये भेद दो प्रकार का है।
पहला तो नित्य मुक्त, ईश्वर से जीव का भेद है ॥

अब सुनो दूसरे प्रकार का, जो मुक्त बद्ध जीव का भेद।
स्पष्ट करने के लिए, तुम्हें सुनाता पहला भेद॥
जीव और ईश्वर बद्ध न मुक्त, भेद से भिन्न होने पर भी।
नियन्ता नियन्त्रित रूप से, स्थित है शरीर में एक ही॥
शरीर एक वृक्ष जिसमें, हृदय का घोंसला बनाकर।
उड़न दो पक्षी रहते हैं, नाम हैं जीव और ईश्वर॥ } दोहा
दोनों ही समान हैं, चेतन होने के कारण।
और सखा भी हैं, न बिछुड़ने के कारण॥
प्यारे उड़न उन दोनों बीच, होता हुआ इतनी समानता।
जीव शरीररूपी वृक्ष के, सुख दुःखादिफल भोगता॥
परन्तु ईश्वर उन फलों को, नहीं भोगता उड़नजी।
उनसे सदैव अलग रह, साक्षीमात्र रहता उड़नजी॥ } दोहा
ईश्वर की विलक्षणता है, कि अभोक्ता होने पर।
ज्ञान ऐश्वर्य आनन्द में, भोक्ता है जीव से बढ़कर॥
इसके साथ ही ईश्वर में, है एक और विलक्षणता।
अपने अतिरिक्त जग को जानते होने हुए भी अभोक्ता॥
परन्तु भोक्ता जीव न अपने, वास्तविक रूप को जाने।
और ना ही अपने से, अतिरिक्त किसी को जाने॥
इनमें जीव नित्यबद्ध है, क्योंकि वो है अविद्या युक्त। } दोहा
और विद्यास्वरूप होने कारण, ईश्वर है नित्यमुक्त॥
ज्ञानसम्पन्न पुरुष का जब, सोते समय सपना टूटना।
तो वह स्वप्न वाले शरीर से, कोई सम्बन्ध नहीं रखता॥
वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी, सूक्ष्म स्थूल शरीर में रहता।
किन्तु उन दोनों शरीर से, कोई सम्बन्ध नहीं रखता॥
परन्तु अज्ञानी पुरुष चाहे, शरीर से सम्बन्ध ना रखता। } दो
किन्तु अज्ञान कारण वो, शरीर में ही स्थित रहता॥ } ६।

जो से अज्ञानी पुरुष जगत, कभी भी स्वप्न देखता।
त्यागे उद्धव वह सभी, स्वाभाविक शरीर से जैसा।।
मलहारादि से इन्द्रिय शब्द स्पर्शादि करती ग्रहण।
क्योंकि यह तो नियम है, गुण ही गुण को करते ग्रहण।।
ध्यान रहे त्यागे उद्धवजी आत्मा गुण ग्रहण न करती।
आत्मा तो लिंग शरीर से, निर्विकार रूप से रहती।।६।
अतः जो ज्ञानी, निर्विकार, आत्म स्वरूप को समझा।
वह विषयों के ग्रहण त्याग में, कोई अभिमान न करता।।

प्रारब्ध अधीन इस शरीर के, जितने भी कर्म होते हैं।
त्यागे उद्धवजी ने सब, गुणों की प्रेरणा से होते हैं।।
अज्ञानी करता मूढ़ ही कर्मों को, कर्मों का कर्ता मान बैठता।।७।
और इसी अभिमान कारण, वह सदैव ही बँध जाता।।८।
ज्ञान प्राप्ति पर विचार कर, समस्त विषयों से विरक्त रहता।
जीवन की किसी भी क्रिया में, स्वयं को कर्ता नहीं मानता।।
बल्कि जीवन क्रियाओं का, गुणों को ही कर्ता मानता।
अतः अपनी कर्म वासना, और फलों से नहीं बँधता।।
वह प्रकृति में रहकर भी, वैसे ही असंग रहता।
जैसे स्पर्श आकाश से, आर्द्रता से सूर्य दूर रहता।।
उसकी बुद्धि की तलवार, संशय भ्रम से पूरी तरह उद्धव।।९।
उससे अपने संदेह संशय, काट काट फेंक देता उद्धव।।१०।

~~पाठ~~
त्यागे उद्धव जी जैसे कोई, व्यक्ति जागता है स्वप्न से।
इसी प्रकार मुक्त हो जाता, भेद बुद्धि के भ्रम से।।
जिनके प्राण मन इन्द्रियों की, चेष्टा होती बिना संकल्प के।
वे देह में स्थित रहकर भी, मुक्त होते उसके गुणों से।।
उन मुक्त पुरुषों के शरीर को, चाहे कोई कीड़ा पहुँचाये।।११।
और चाहे देवयोग से, उद्धव जी उन्हें कोई पूजे।।१२।

वे ना तो सताने से किसी के, दुःखी होते हैं उद्धव जी।
और ना ही पूजा करने से, सुखी होते हैं उद्धव जी॥
जो गुण दोष की भेद दृष्टि से, उद्धव जी ऊपर उठ जाते।
न शुभ कर्म कर्ता की स्तुति, न अशुभ कर्म कर्ता की निन्दा करते॥ } दोहा
ना किसी की सराहना करते, उनकी अच्छी बात सुनकर।
ना ही किसी को झिड़कते उनकी बुरी बात सुनकर॥
जीवन्मुक्त पुरुष न तो, कुछ भला या बुरा काम करते। } दोहा
ना ही कुछ भला या बुरा, कहते और ना ही कभी सोचते॥
वे व्यवहार में समवृत्तिरत, आत्मानन्द में मगन रहते।
जैसे कोई मूर्ख घूमता, ऐसे विचरण करते रहते॥
प्यारे उद्धव जो पुरुष भेदों का, तोड़ गामी विद्वान है।
परन्तु उसे भी आता हो परब्रह्म का ज्ञान॥
उसके परिश्रम का कोई फल ना, कहते हैं ठीक वैसा।
बिना दूध देने वाली, गाय का पालने वाला जैसा॥
दूध न देने वाली गाय, स्त्री जो है व्यभिचारिणी। } दोहा
पराधीन शरीर दुष्ट पुत्र, और व्यर्थ मेरे गुण रहित कथनी॥
सत्पात्र के प्राप्त होने पर भी, दान ना किया धन रखना।
इन सबकी चौकीदार सदैव, दुःख पर दुःख ही भोगना॥
इसीलिए उद्धव जिस वाणी में, मेरी सभी लोक पावन।
उत्पत्ति स्थिति प्रलय रूप, लीला का ना हो वर्णन।
और लीलावतारों में भी, राम-कृष्णादि अवतार।
इनका यदि यशोगान नहीं, वह वाणी है बेकार॥
प्यारे उद्धव बुद्धिमान पुरुष, को चाहिए कि ऐसी। } दोहा
बेकार वाणी का उच्चारण, या प्रशंसा ना करे कभी॥
प्यारे उद्धव जैसा कि, अभी लिया गया वर्णन।
आत्म जिज्ञासा विचार द्वारा, आत्मा में अनेकता भ्रम॥
जो इस भ्रम को दूर कर, अपना निर्मल मन लगा दे।
वह उपरम हो जाये, संसार के व्यवहारों से॥

फिर भी यदि तुम अपना मन मुझ पर ब्रह्म स्थिर न कर सको।
तो सारे कर्म निरपेक्ष हो, मेरे लिए ही करो ॥
मेरी समस्त लीलाकथा, श्रद्धा पूर्वक सुननी चाहिए।
अवतारलीला का गान, स्मरण अभिनय करना चाहिए ॥
मेरे आश्रित होकर, मेरे ही लिए उद्धव जी।
धर्म काम और अर्थ का, सेवन करना चाहिए उद्धव जी ॥
प्रिय उद्धव जो ऐसा करता, उसे मुझ पर ब्रह्म अभिलाषी। } द्वा
ईश्वर के प्रति अनन्य, प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाती ॥ }
सत्संग से प्राप्त होती भक्ति, भक्त मेरी उपासना करता।
और प्यारे उद्धव जी को, मेरा सान्निध्य अनुभव करता ॥
इस प्रकार जब उसका, अन्तःकरण शुद्ध हो जाता।
तब वह मेरे परमपद को, सहज ही प्राप्त हो जाता ॥
अब उद्धव जी ने पूछा- भगवन, संत करे आपकी कीर्ति गान। } द्वा
कृपया बतलाइये भगवन कि, संत पुरुष की क्या पहचान ॥ }
और बताये आपके प्रति कैसी, भक्ति करनी चाहिए भगवन।
जिस भक्ति का करते आदर, बड़े बड़े ज्ञानी संत जन ॥
आप ही देवता, सत्यादि लोक, हैं स्वामी चराचर जगत।
मैं आपका विनीत, प्रेमी और अब हूँ शरणागत ॥
कैसे होती है भक्ति और कैसे होते भक्त समझाइये।
कृपया भगवन मुझे भक्ति, और भक्त रहस्य बताइये ॥
मैं जानता हूँ कि आप, प्रकृति से परे पुरुषोत्तम भगवन।
चिदाकाश स्वरूप ब्रह्म, शुद्ध भी नहीं आपसे भिन्न ॥
लीला के लिए अवतार लिया, यह शरीर धारण करके। } दोन
इसीलिए आप ही भक्ति और, भक्त का रहस्य बता सकते ॥ }

श्री कृष्ण बोले - प्यारे उद्धव मेरे भक्त वृक्ष की सूरत।
वह किसी भी प्राणी से, ना करे वैरभाव किसी सूरत ॥
घोर से घोर दुःख भी वह प्रसन्नता पूर्वक सहता है।
उसके पावन हृदय में, सत्य सदैव रहता है ॥

उसके मन में किसी तरह की पाप वासना नहीं आती।
सबका भला चाहनेवाला और होता है समदर्शी ॥
उसकी बुद्धि कामनाओं से कलुषित नहीं होती।
वह होता है पवित्र, मधुर स्वभाव और संयमी ॥
प्यारे उद्धव मेरा भक्त सदैव संग्रह प्रवृत्ति से दूर रहता।
किसी भी वस्तु के लिए, कभी कोई चेष्टा नाकरता ॥ } दोहा
परिमित भोजन करता है और प्रसन्न रहता है।
वह आत्मतत्व चिन्तनमें, सदा संलग्न रहता है ॥
बुद्धि उसकी स्थिर रहती, मेरा ही भरोसा रहता है।
वह उन्मादरहित, गम्भीर, और धैर्यवान होता है ॥

भूख प्यास शोक मोह जन्म मृत्यु रहते उसके वश में।
कैसा भी सम्मान ना चाहे मेरा भक्त कभी किसी से ॥
परन्तु प्यारे उद्धव वह, दूसरों का सम्मान करता। } दोहा
और सभी के साथ वह मित्रता का व्यवहार करता ॥
हृदय में करुणा होती, तत्व ज्ञान यथार्थ होता।
मेरे सम्बन्धी बातों को, समझाने में निपुण होता ॥
मैंने वेदशास्त्रों में उद्धव, उपदेश किया है धर्म का।
उसके पालन से होता, अन्तःकरण शुद्ध मनुष्य का ॥
और नरकादि प्राप्त होते, जो करे धर्म का उल्लंघन। } दोहा
पर मेरा भक्त उन्हें भी पार, गाता है केवल मेरा भजन ॥
मैं कौन हूँ कितना बड़ा हूँ, इसे जाने चाहे ना जाने वो।
मेरे विचार से परम श्रेष्ठ है, अनन्य भाव से भजन करे जो ॥

प्यारे उद्धव मेरी मूर्ति और, मेरे भक्तजनों का दर्शन।
सभी पूजा सेवा स्तुति, करे मेरे गुण कर्म कीर्तन ॥
मेरी कथा श्रवण में प्रीति, मेरा ध्यान करता रहे। } दोहा
जो मिले समर्पित कर दे, दासभाव आत्म निवेदन करे ॥

मेरे दिव्य जन्म की और मेरे कर्मों की चर्चा करे।
धार्मिक उत्सव पर संगीत मेरे मन्दिर में उत्सव करे॥
धार्मिक त्योहारों के दिन मेरे स्थानों की यात्रा करे।
जुलूस निकाले और उपहारों से मेरी पूजा करे॥
वैदिक अथवा तान्त्रिक विधि से गुरु से दीक्षा ग्रहण करे। } दो।
प्यारे उद्धव श्रद्धा से मेरे व्रतों का पालन करे॥ }
मन्दिरों में मेरी मूर्ति की स्थापना में श्रद्धा रखे।
यदि यह काम अकेला न हो तो मिलकर उद्योग करे॥
मेरे लिए पुष्पवाटिका बगीचे, क्रीड़ा स्थल मन्दिर बनवाये।
प्यारे उद्धव विभिन्न प्रकार से उनको सजवाये॥
सेवक भाँति सेवा भाव से मन्दिरों की सेवा शुश्रूषा करे।
झाड़े बुहारे लीपे-पोते, छिड़काव करे चौक पूरे॥

कभी अभिमान न करे, और कभी दम्भ न करे उद्धव।
साथ ही अपने शुभ कर्मों का ढिंढोरा न पीटे उद्धव॥
मेरे चढ़ावे को अपने काम में लगाने की बात तो दूर रही।
कभी अपना काम न ले, मेरे दीपक के प्रकाश से भी॥
किसी दूसरे देवता पर चढ़ावी हुई वस्तु मुझे कभी न चढ़ावे। } दो।
जो वस्तु प्रिय अभीष्ट हो, वो ही मुझ पर चढ़ावे॥ }

सूर्य अग्नि ब्राह्मण गौ वायु, वैष्णव जल पृथ्वी आसमान।
आत्मा और समस्त प्राणी, मेरी पूजा के स्थान॥
ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद के, मन्त्रों से सूर्य में करे मेरी पूजा। } दो।
हवन अग्नि श्रेष्ठ ब्राह्मण; हृदय पास में करे मेरी पूजा॥ }
करे आराधना भाई बन्धु के, समान सत्कार से वैष्णव में।
और करे निरन्तर ध्यान में लगे रहे दृढ़ भावना से॥
और उद्धव करे आराधना, सुरक्षित प्राण समस्त वायु में। } दो।
और जल पुष्प आदि, सामग्रियों द्वारा जल में॥ }

पुष्प मन्त्रों द्वारा-मुझमें, मिट्टी की बेदी में।
मंत्रों द्वारा आत्मा में, समदृष्टि से प्रतिमा में।।

प्यारे उद्धव इस तरह मेरी, करनी चाहिए आराधना।
दोहा
क्योंकि मैं सभी में स्थित, बनके शुद्ध आत्मा।।

इन स्थानों पर शंख चक्र, गदा पद्म लिये चतुर।
और भुजा वाले शान्ति मूर्ति, विराजमान हैं श्रीभगवन।।

इस तरह का ध्यान करके, सभी अवयवों को उद्धव।
एकाग्रता के साथ मेरी, पूजा करनी चाहिए उद्धव।।

इस प्रकार जो मनुष्य एकाग्र, चित्त से ध्यानादि करता।
और बाहरी मनको कर, पूजा करता।।

उसे मेरी श्रेष्ठ भक्ति, प्राप्त होती है उद्धव।
संत पुरुष की सेवा से, मेरा स्वरूप ज्ञान हो जाता उद्धव।।

मेरा निश्चय है कि सत्संग, और भक्ति योग दोनों का।
एक साथ ही अनुष्ठान, करते रहें इन साधनों का।।

प्रायः सत्संग और भक्तियोग, इन दोनों के अतिरिक्त उद्धव।
संसार सागर पार करने का, कोई और उपाय नहीं है उद्धव।। दो

क्योंकि सन्त पुरुष मुझे, आश्रय मानते मुझे अपना।
उनके ही पास बना रहता, उद्धव मैं सदा सर्वदा।।

एक रहस्य की बात बताऊँ, क्योंकि तुम सेवक सखा हो।
प्यारे उद्धव एक ही तुम, सुनने के भी इच्छुक हो।।

बारहवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद भागवत का बारहवां अध्याय (बारहवां स्कन्ध)।
जिसमें कर्म त्याग की विधि, बखानी है महिमा सत्संग।।

श्रीकृष्ण कहते हैं उद्धव, अब सुनो महिमा सत्संग की।
जितनी भी हैं आसक्तियां, नष्ट करे सत्संग सभी।।

ना योग, सांख्य, धर्म पालन, और ना ही स्वाध्याय उद्धव।
एकमात्र सत्संग ही मुझको, वश में कर लेता है उद्धव।।

मय त्याग इष्टापूर्त दक्षिणसे, नहीं होता प्रसन्न मैं केवल।
एक रे उद्धव निश्चलज्ञानी, सत्संग से होता हूँ जैसा।।
कहाँतक कहूँ यम-नियम, व्रत यज्ञ वेद और तीर्थ।
ये सत्संग के समान मुझे, ना वशीकरण में समर्थ।।
एक मुझ की ये ना तन नहीं, सभी मुझ की है बात। } दोहा
सत्संग से मुझे प्राप्त करें, दैत्य पशु पक्षी नारी नर।।
मनुष्यों में वैश्य शूद्र स्त्री, रजोगुनी तमोगुनी प्रकृति में।
मेरा परमपद प्राप्त किया, उद्धव जीवों ने बहुत से।।
वृत्रासुर प्रहलाद बलि, बाणासुर सुग्रीव हनुमान।
वृषपर्वा मयदानव तुम्बा, गजेन्द्र जटायु जाम्बवान।।
ध्रुव उद्धव विभीषण अर्जुनादि, गोकुल ब्रज की गोपिका।
और इसके भी लोग, सब मैं सारी मुझ परायण।।
इन्होंने नहीं की उपासना, वेदों का अध्ययन ना किया। } दोहा
केवल सत्संग के प्रभाव से, मुझे इन्होंने प्राप्त किया।।
इन्होंने कृच्छ चान्द्रायण आदि, व्रत तपस्या नहीं की।
बस सत्संग के द्वारा, की इन्होंने मेरी प्राप्ति।।
गोपिका गण अमलार्जुन, ब्रज के हरिनु कालिय नाग।
ये सब तो मूढ़ बुद्धि थे, जब तब से इन्हें था अनुराग।।
इतने ही नहीं बहुत से हैं, केवल प्रेम भाव को पाया।
और कृत कृत्य हो गये, अनायास जब मुझको पाया।।
बड़े बड़े साधकों ने किया, योग दान व्रत सांख्य तपस्या। } दोहा
यज्ञ, स्वाध्याय सन्यास, और की श्रुतियों की व्याख्या।।
इतने साधन करके भी, नहीं पा सके मुझको उद्धव।
परन्तु सत्संग के द्वारा, सहज सुलभ हो जाता उद्धव।।
तुम्हारे उद्धव जिस समय, बलराम जी के साथ मुझे।
लाया अक्रूर जी ले आये, मथुरा नागरी जन ब्रज से।।

उस समय गोपियों का हृदय, अगाध प्रेम के कारण उद्धव।
मेरे अनुराग के रंग में, पूरा रंगा हुआ था उद्धव।।
मेरे वियोग की व्याधि से, वे व्याकुल हो रही थीं।
मेरे उपचार उन्हें कोई बहुत सुखकारक नहीं जान पड़ते।
जैसा कि तुम जानते हो कि, मैं ही उनका एकमात्र प्रियतम। } दोहा।
बहुत सी रात्रि रास किया, उनके संग जब था वृन्दावन।।
उद्धव ने रास की रात्रियां बीती जैसे आधा क्षण।
मेरे बिना वे ही रात्रियां, लगती थीं एक एक कल्प सम।।
जैसे बड़े-बड़े ऋषि मुनि, समाधि में स्थित होकर।
तथा गंगा आदि बड़ी बड़ी नदियां समुद्र में मिलकर।।
प्यारे उद्धव वे सभी अपना, नाम रूप सब खो देती। } छंद।
वे गोपियां मेरे प्रेम में, इतनी तन्मय होगई थी।।
कि उन्हें लोक परलोक, अपने शरीर पति-पुत्रादि की।
प्यारे उद्धव किसी की भी, उन्हें सुध बुध नहीं रहती थी।।
उद्धव उन गोपियों में से, बहुत सी तो ऐसी थी।
जो मेरे वास्तविक, स्वरूप को नहीं जानती थी।।
वे मुझे भगवान न जानकर केवल प्रियतम ही समझती। } छंद।
और जार भाव से मुझसे, मिलने की आकांक्षा करती थी।।
उन साधन हीन सैकड़ों, हजारों अबलाओं ने।
मुझ पर ब्रह्म को पा लिया, केवल संग के प्रभाव से।।
इसलिए उद्धव करो परित्याग, तुम श्रुति, स्मृति।
सुनने योग्य न सुने विषय, विधि निषेध प्रवृत्ति निवृत्ति।।
सर्वत्र मेरी ही भावना कर, आओ मेरी हो शरण। } दोहा
प्राणियों के आत्मस्वरूप, मेरी भक्ति को ग्रहण।।
उद्धव जी बोले प्रभु मैंने, मैं आपका उपदेश सुन रहा।
परन्तु इससे मेरे मन का, सन्देह नहीं मिट रहा।।
भगवान क्या मुझे केवल ही, स्वधर्म का पालन करना चाहिए।
या सब कुछ छोड़ कर, आपकी शरण ग्रहण करनी चाहिए।।

सचमुच मेरा मन प्रभु, इधर उधर है भटका।
कभी करूं कभी नी करूं, इसी दुविधा में लटका॥
क्या है मेरा वास्तविक धर्म, क्या वास्तव में करना चाहिए।
भगवन आप कृपा करके, भली भाँति मुझे समझाइये।
भगवान श्री कृष्ण यूं बोले, प्रिय उद्धव जिस परमात्मा का।
अधिकांश परोक्षरूप से, उसका वर्णन किया जाता॥
सचमुच वे साक्षात अपरोक्ष, अर्थात प्रत्यक्ष ही हैं। वे
क्योंकि वस्तु की सत्ता स्फूर्ति, जीवन दान करने वाले वे ही हैं।
पहले अनाहत नादस्वरूप, परा वाणी नामक प्राण होके।
संग मूलाधार चक्र में, उद्धव वे प्रवेश करते॥

उसके बाद मणिपूरक चक्र, अर्थात नाभिस्थान आ के।
पश्यन्ती वाणी का मनोमय, सूक्ष्म रूप धारण करते॥
तदनन्तर कण्ठदेश में स्थित, विशुद्ध नामक चक्र में आते।
और वहाँ मध्यमा वाणी के रूप में व्यक्त होते॥
फिर क्रमशः मुख में आकर, ह्रस्व दीर्घादि मात्रा ग्रहण। } द।ध।
और उदात्त अनुदात्त स्वर, ककारादि वर्ण करे ग्रहण॥ }
प्यारे उद्धव अग्नि आकाश में, ऊष्मा अथवा विद्युत।
उसके रूप में सर्वत्र, अव्यक्त रूप में है स्थित॥
जब बलपूर्वक किया जाता, प्यारे उद्धव काष्ठ मन्थन।
वायु में प्रकट होती वह, नन्ही चिन्गारी सूक्ष्म अत्यन्त॥
उसपर फिर प्यारे उद्धव वही, चिन्गारी आहुति देने पर।
कितना प्रचण्ड रूप को, कर लेती है धारण॥
वैसे ही मैं भी शब्दब्रह्म से, क्रमशः परा पश्यन्ती मध्यमा। } द।ध
और वैखरी वाणी के, रूप में प्रकट होता॥
इसी प्रकार बोलना, चलना, हाथों से काम करना।
मल मूत्र त्यागना संघना चखना, मन से संकल्प विकल्प करना॥
देखना बुद्धि से समझना, अहंकार से अभिमान करना। } दे
महत्तत्व के रूप में सबका, जानना सुनना छूना सुनना॥ } हो

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के सारे विकार।
कहाँ तक कहूँ समस्त कर्ता, कारण कर्म मेरी माया अपार॥

त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड का कारण, करने वाला सबको जीवित।
यह आदि पुरुष पहले, एक ओर था अव्यक्त॥
जैसे उपजाऊ खेत में, बोया हुआ बीज उद्धव। } दोहा
सारवा पत्र पुष्पादि, कई रूप धारण करता उद्धव॥

वैसे ही कालगति से, माया का आश्रय लेकर।
शक्ति विभाजन के द्वारा, अनेक रूप दिखता ईश्वर॥
जैसे नागों के ताने-बाने में, वस्त्र ओत प्रोत रहता।
वैसे ही ये सारा विश्व, प्रभु में ही ओतप्रोत रहता॥
वस्त्र का अस्तित्व नहीं, जैसे सूत के बिना उद्धव। } दोहा
किन्तु सूत रह सकता है, वस्त्र के बिना उद्धव॥
वैसे ही जग के न रहने पर भी रहता है परमात्मा।
पर जग का कोई अस्तित्व नहीं [redacted] बिना परमात्मा।

यह संसार वृक्ष अनादि, प्रवाह रूप से है नित्य।
इस वृक्ष के फल फूल, हैं भोग और मोक्ष॥

संसार वृक्ष के दो बीज, पहला पाप दूसरा पुण्य।
अरण्य वासनायें जड़ें, और तने हैं तीन गुण॥
उद्धव पाँच भूत इसकी, मोटी मोटी प्रधान शाखा।
शब्दादि पाँच विषय रस, ग्यारह इन्द्रियां शाखा॥
तुम्हारे उद्धव संसार वृक्ष में, दो पक्षी जीव और ईश्वर। } दोहा
करते हैं सदा निवास, इसमें घोंसला बनाकर॥

सूर्य मण्डल तक फैला हुआ, उद्धव यह वृक्ष विशाल।
वात पित्त और कफ रूप, तीन तरह की इसमें डाल॥
संसार चक्र में नहीं पड़ते, सूर्य मण्डल भेदक मुक्त पुरुष। दोहा
इस में दो तरह के फल लगते, पहला सुख और दूसरा दुःख॥

जो गृहस्थ शब्द-रूप-रस, विषयों में फँसे हुए
वे गीध के समान क्योंकि, हैं कामना से भरे हुए ॥
उद्धव ने इस वृक्ष का, दुःखरूप फल भोगते हैं।
क्योंकि वे अनेक प्रकारके, कर्म बन्धन में फँसे रहते हैं॥
विषयों से विरक्त रहते हैं, जो अरण्य वासी परमहंस। } दो
सुखरूप फल भोगते हैं, इस वृक्ष में जैसे राजहंस॥ }
वास्तव में मैं एक ही हूँ, अनेकप्रकारका रूप उद्धव।
ये सब छलावा है, केवल मायामय है उद्धव॥
उद्धव जो इस बात को, गुरुओं से समझ जाता।
वही वास्तव में समस्त, वेदों का रहस्य जानता॥
अतः उद्धव अनन्य भक्ति द्वारा, ज्ञान कुल्हाड़ी पैनी करले।
उसके द्वारा धैर्य सावधानी से, जीव भाव को काट डाले॥
फिर परमात्मा स्वरूप होकर, वृत्तिरूप अस्त्रों को छोड़े। } दो
और अपने अखण्ड, स्वरूप में ही स्थित हो॥ }

तेहरवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद्भागवत का तेहरवां अध्याय ग्यारहवां स्कन्ध।
हंसरूप से सनकादि को, दिये हुए उपदेश का वर्णन॥
श्रीकृष्ण कहें- प्रिय उद्धव, सत रज तम ये तीनों गुण। } छः।
आत्मा के नहीं हैं ये, बुद्धि यानि प्रकृति के हैं गुण॥ }
रज-तम पर विजय पाये, सत्त्व गुण के द्वारा।
सत्त्व की दया आदि वृत्तियां, शान्त करे शान्ति द्वारा॥
प्यारे उद्धव सुनो ध्यान से, जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती।
तभी जीव को मेरे भक्तिरूप, स्वधर्म की प्राप्ति होती॥
सात्त्विक वस्तु निरन्तर सेवन से, सत्त्वगुण की वृद्धि होती। } छः।
तब भक्तिरूप स्वधर्म में, प्रवृत्ति होने लगती॥ }
जिस धर्म से सत्त्व गुण वृद्धि, वही सबसे श्रेष्ठ धर्म।
वह धर्म नष्ट कर देता, रजोगुण और तमो गुण॥

प्यारे उद्धव जब ये दोनों, गुण नष्ट हो जाते हैं।
तब इनसे पैदा अधर्म, शीघ्र ही मिट जाते हैं॥

प्यारे उद्धव दस वस्तुएं, शास्त्र जाल देश प्रजाजन।
समय कर्म ध्यान संस्कार, मन्त्र और दसवां जन्म॥
उद्धव यदि ये दस वस्तुएं, सात्विक हों तो सत्व गुण की। } दोहा
यदि ये हो राजसिक, तो निसन्देह रजोगुण की॥
और ये दस की दस वस्तुएं, यदि हो तामसिक उद्धव।
तो फिर तमोगुण की, वृद्धि होती है उद्धव॥

महात्मा जिनकी करें प्रशंसा, वे सात्विक होती हैं।
जिनकी निन्दा करते हैं, वे तामसिक होती हैं॥
इनमें से शास्त्रज्ञ महात्मा जिनकी उपेक्षा करते हैं।
प्यारे उद्धव उन वस्तुओं को, हम राजसिक कहते हैं॥
जब तक आत्म साक्षात्कार न स्थूल सूक्ष्म शरीर उद्धव। } दोहा
और उनके कारण तीनों, गुण निवृत्ति न हो उद्धव॥
तब तक मनुष्य को चाहिए कि, सत्वगुण वृद्धि को उद्धव।
सात्विक शास्त्र आदि का, ही सेवन करे उद्धव॥
सात्विक शास्त्र सेवन से, धर्म की वृद्धि होती उद्धव।
और धर्म की वृद्धि से, अन्तकरण शुद्ध होता उद्धव॥
और अब प्यारे उद्धव तुम, सुनो लगाकर ध्यान। } दोहा
अन्तःकरण शुद्ध होकर, होता आत्मतत्व का ज्ञान॥
जैसे आंखों की रगड़ से, आग पैदा हो जाती उद्धव।
और वह उनके सारे मल को, जलाकर शान्त हो जाती उद्धव॥
शरीर में भी विचार मन्थन से, ज्ञानाग्नि प्रज्वलित होती।
समस्त शरीर गुणों को, भस्म कर शान्त हो जाती॥
उद्धव से इस तरह सब जाने, विषय विषाग्नि का ध्यान भगवन। } दोहा
फिर भी मुक्ते गर्भ समान, उन्हीं को भोगों का कारण॥

श्री कृष्ण बोले जब जीव, अहंबुद्धि कर बैठता उद्धव।
सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थूल कार्यमें, अपने स्वरूप को भूल उठता॥
यद्यपि वह अज ही है, पर उसका सत्त्वप्रधान मन।
रजोगुण और झुकता, उससे व्याप्त हो जाता मन॥
होता रजोगुण बढ़ते ही उद्धव, संकल्प विकल्प का लगातार संग। देखो
मन करता विषय चिन्तन, काम के फन्दे में फँस जाता। हो
अब वह अज्ञानी काम वश, अनेक कर्म करने लगता।
इनका फल दुःख ही है, जानते हुए भी कर्म करता॥
उस समय वह रजोगुण के, तीव्र वेग से मोहित रहता।
जाने अनजाने वह उद्धव, प्रायः दुःख ही दुःख सहता॥
यद्यपि विवेकी का चित्त भी, विक्षिप्त होता कभी कभी।
तथापि उसकी क्रियाओं में, दोष दृष्टि बनी रहती॥
इसलिए वह चेष्टा करता, चित्त को एकाग्र करने की। देखो
पर उद्धव जिससे उसकी, क्रियाओं में आसक्ति नहीं होती॥ हो
साधक आसन प्राणवायु पर, विजय प्राप्त कर अपनी शक्ति।
सावधानी से धीरे धीरे, मुझमें बढ़ावे अपनी आसक्ति॥
यदि देखे असफलता, इस प्रकार अभ्यास करते।
तनिक भी झुके नहीं, जुड़े उसी में उत्साह से॥
मेरे शिष्य सनकादि ने, बताया योग का यही स्वरूप।
सब ओर से मन खींच साधक, मुझमें होजावे पूर्ण रूप॥
उद्धव जी बोले - श्री कृष्ण, जिस समय जिस रूप सनकादिक। देखो
योग आदेश दिया आपने, जानना चाहता मैं उस रूप को॥ हो

श्रीकृष्ण भगवान बोले - उद्धव, जैसा कि जाना सब कुछ।
कि सनकादि परमर्षि हैं, ब्रह्मा जी के मानस पुत्र॥
उद्धव जी एक बार उन्होंने, अपने पिता ब्रह्मा जी से। देखो
प्रश्न किया योग की सूक्ष्म, अन्तिम सीमा के सम्बन्ध में॥
सनकादि ने पूछा पिताजी, चित्त गुणों में रहता डूबा ही।
और गुण भी चित्त की, वृत्ति में प्रविष्ट रहते ही॥

सनकादि फिर आगे बोले, इससे सिद्ध होता है मिलाजी।
चित्त और गुण आपस में, रहते हैं मिल जुल ही।।
ऐसी स्थिति में जो पुरुष मुक्ति पद प्राप्त करना चाहता।
वह दोनों को एकदूसरे से, अलग कैसे कर सकता।।
श्री कृष्ण कहते - उद्धवजी, सर्वज्ञ ब्रह्माजी यद्यपि। } दोहा
प्राणियों के जन्मदाता, स्वयम्भू और देवशिरोमणि।।
फिर भी सनकादि के ऐसे, प्रश्न पूछने पर ध्यान करके भी।
प्रश्न का मूल कारण ना समझे, कर्मप्रवण बुद्धि उनकी।।
तब ब्रह्मानी ने उत्तर के लिए, किया भक्तिभाव से मेरा चिन्तन। } दो
तब मैं उनके सामने आया, करके हंस का रूप धारण।। }
मुझे देखकर सनकादि ने, ब्रह्माजी को आगे करके।
कौन है आप यह मुझसे, मेरी चरणवन्दना करके।।
प्यारे उद्धव सनकादि वृन्द, परमार्थ तत्व जिज्ञासु थे।
उनके पूछने पर मैंने, जो कुछ कहा सुनो मुझसे।।
मैंने कहा - परमार्थ रूप वस्तु यदि नानात्व से रहित सर्वथा। } दोहा
तब आत्मा के सम्बन्ध में कैसे, युक्ति संगत प्रश्न आपका।। }
अथवा ब्राह्मणो यदि मैं, उत्तर देने के लिए बोलूं।
तो किस जाति गुण क्रिया का आश्रय ले उत्तर दूं।।
पंच भूतात्मक देव मनुष्य पशु पक्षी शरीर अभिन्न हैं।
और साथ ही परमार्थ, रूप में भी अभिन्न हैं।
ऐसी स्थिति में- आप कौन मानी व्यवहार आपका प्रश्न।
बोलिचार पूर्वक नहीं, अतः निरर्थक है ब्राह्मण।।
मन वाणी दृष्टि इन्द्रियों से, जो कुछ किया जाता ग्रहण। } दोहा
वह सब मैं ही हूं, कुछ भी नहीं मुझसे भिन्न।। }
यह सिद्धान्त समझाने हेतु, बतलाता हूं तत्व विचार।
प्रश्नों से चित्त चिन्तन करते, हो जाता है विषयाकार।।

यह ज्ञान सत्य है ब्रह्मका विषय चित्त में होने प्रकट।
मेरे स्वरूप भूत जीव के देह मही दोनों विषय और चित्त।।
अर्थात विषय और चित्त हैं ये देह की उपाधि।
आत्मा का चिन्तन और, विषय से सम्बन्ध नहीं।।
बार बार विषय चिंतन से जो चित्त हुआ विषयाकार।
और ब्रह्मज्ञान से विषय मयी चित्त में हो गये प्रकट।।
अपने वास्तविक से अभिन्न मेरा साक्षात्कार कर ब्रह्मरूप।
अतः विषय चिन्तन करो, त्यागना है ब्रह्मज्ञानी
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था, होती सत्त्वादि गुणानुसार।
ये वृत्ति की वृत्ति माँ हैं, नहीं सच्चिदानन्द स्वभाव।।
वृत्ति साक्षी होने कारण, जीव उनसे विलक्षण [redacted]।
यह सिद्धान्त श्रुति युक्ति, और अनुभूति से प्रमाण [redacted]।।
+योंकि वृत्ति वृत्तियों द्वारा, होने वाला यह बन्धन ही।
वृत्तियों का दान करना, आत्मा से त्रिगुण मयी।।
इसलिए तीनों अवस्था में, विलक्षण और अनुगत उनसे।
हो स्थित मुक्त तुरीय तत्त्व में, वृत्ति बन्धन त्याग करके।
तब विषय और चित्त दोनों का, मुक्ति त्याग हो जाता है।
यह बन्धन अहंकार रचित, सत्य ज्ञानरूप छिपा देता है।।
मनुष्य विरक्त हो जाये, इस बात को जानकर।
चिन्ता छोड़े सो अवस्था अनुगत, तुरीय स्वरूप में होकर।।
जब तक पुरुष की, भिन्न भिन्न पदार्थों में।
निवृत्ति नहीं हो जाता, सत्त्व अंश मय बुद्धि से।।
तब तक यह अज्ञानी मनुष्य जागता है पर सोता-सा रहता।
में जागा रहा हूँ ऐसा, उसे स्वप्नावस्था जान पड़ता।।
आत्मा से अस्तित्व नहीं, देह [redacted] प्रतीयमान प्रपंच का।
अतः वर्णाश्रमादि भेद, स्वर्ग कर्म दान के हाव हैं मिथ्या।।

जो समस्त इन्द्रियों के द्वारा, अपनी जाग्रत अवस्था में
बाहर दीखने वाले बाह्यभंजुर पदार्थों को अनुभव करता।।

स्वप्नावस्था में हृदय में ही विषयों का अनुभव करता।
जैसे जाग्रत अवस्था में, देखे पदार्थ अनुभव करता।।
और सुषुप्ति अवस्था में उन सारे ही विषयों को।
यह अनुभव करता है, समेटकर उनकी लय को।।

जाग्रत अवस्था के इन्द्रिय, स्वप्न अवस्था के मन का।
एक वही स्वामी है, सुषुप्ति संस्कारवती बुद्धि का।। } ख
स्वप्न देखना जो मैं सोया, जाग रहा हूँ मैं वही।
आत्मा सभी अवस्था में, होना किंतु स्मृति पर ही।।
मन की ये तीनों अवस्थाएं गुणों के द्वारा मेरी माया से।
कल्पित की गई हैं उनमें, मेरे अंश स्वरूप जीव में।।
उनमें ये तीनों अवस्थायें आत्मा में नितान्त असत्य।
मेरा ही भजन करो ऐसा करके तुम निश्चय।।
सद्गुरुओं द्वारा किये गये, उपनिषदों के श्रवण से आत्मा। } ख
पैनी तलवार के द्वारा, अहंकार का कर छेदन आत्मा।। } ख
तुम्हारे हृदय में मैं बैठा हूँ, अनुभव करके तो देखो।
माया के जाल को काट, मेरा भजन करके तो देखो।।
दीखने पर भी नष्ट प्राय है यह जगत मन का विलास है।
मनकारियों की बनी ही समान अत्यन्त चंचल भ्रम मात्र है।।
ज्ञाता और ज्ञेय के, भेद से रहित ज्ञान स्वरूप। } द्वैत।
भासित हो रहा है एक, आत्मा ही अनेक रूप।।
यह स्थूल शरीर इन्द्रिय, अन्तःकरण त्रिगुण परिणाम।
अज्ञान से कल्पित है, माया रचेल स्वप्न समान।।
दृश्य रहित इन्द्रियों के, आधार से हीन होकर।
आत्मानन्द मग्न हो जाये, देह दृश्य से दृष्टि हटाकर।।

आहारादि समय कभी कभी, वह ऐंद्रायिक प्रपंच दीखता।
[redacted] तथापि यह पहले ही, सिद्ध का समझ छोड़ जा चुका।
इसीलिए वह पुनः आत्मिमूलक मोह उत्पन्न में नहीं समर्थ।
केवल संस्कार मात्र उसकी, प्रतीति होती देहपात पर्यन्त॥

जैसे मदिरा पीकर उन्मुक्त पुरुष में नहीं देखता।
कि उसके द्वारा पहना वस्त्र शरीर पर आगिर गया॥
वैसे ही सिद्ध पुरुष ने जिस शरीर से उत्तम साक्षात्कारिक्य को
वह खड़ा पैर बैठा है या अन्य इन बातों पर ना ध्यान दिया॥
प्राण इन्द्रिय यह शरीर भी, प्रारब्ध के अधीन [redacted]
आरम्भक कर्म जबतक, तबतक प्रतीक्षा करता [redacted]॥
समाधि पर्यन्त योग आरूढ़ करने वाला आत्म साक्षात्कार।
गृहस्थी प्रपंच सहित शरीर, कभी नहीं करता स्वीकार॥
वह [redacted] अपना न माने, किसी भी सांसारिक वस्तु को।
जैसे जाग पुरुष न माने, स्वप्नावस्था के शरीर को॥
श्री कृष्ण बोले - सनकादि जी, मैंने तुम से जो कहा। } ६।६।
वह गोपनीय रहस्य है, सांख्य और योगादि का॥ }
मैं स्वयं भगवान हूँ प्रारम्भ, और तुम लोगों को।
तत्वज्ञान उपदेश करने, यहाँ आया ऐसा समझो॥
मैं योग सांख्य सत्य = मृत, तेज, श्री, कीर्ति और दम।
इन सबका परम गति, और हूँ अधिष्ठान परम॥
मैं समस्त गुणों से रहित, नहीं रखता किसी की अपेक्षा।
फिर भी साम्य असंगता, सभी गुण करते सेवन मेरा॥
ये सब गुण मुझमें प्रतिष्ठित, क्योंकि मैं हूँ सभी सबका। } ६।६।
सबका सुहृद, सबका प्रियतम, और हूँ मैं सबका आत्मा॥ }
सच पूछो तो उन्हें गुण, कहना भी ठीक नहीं।
क्योंकि वे नित्य हैं सत्व गुणों के परिणाम नहीं॥

श्री कृष्ण तब उद्धव से बोले, इस प्रकार सुनो उद्धव प्यारे।
मैंने सनकादि मुनियों के, मिटा दिये थे संशय सारे॥
उन्होंने मेरी पूजा की तब, किया मेरी महिमा का गान।
फिर मैं अदृश्य होकर, लौट गया अपने धाम॥

चौदहवाँ अध्याय

अब सुनो श्रीमद भागवत का, चौदहवाँ अध्याय सारतों का सार है
जिसमें भक्ति योग की महिमा, और ध्यान विधि का वर्णन॥
उद्धव जी ने पूछा भगवन, साधन अनेकों आत्मकल्याण
क्या उनमें सभी श्रेष्ठ हैं, या कोई एक प्रधान॥

आपने तो भक्ति योग को बताया निरपेक्ष साधन।
क्योंकि इसी से बढ़े आसक्ति तन्मय होता आपमें मन॥
श्री कृष्ण बोले - प्यारे उद्धव, समय के फेर से वेदवाणी।
प्रलय के अवसर पर, लुप्त हो गयी थी सारी॥
जब सृष्टि का समय आया, तब मैंने वेदवाणी को।
आपने ही संकल्प से, उपदेश किया था ब्रह्मा को॥
निःसन्देह ये वेदवाणी, है अलौकिक अति पावन।
प्यारे उद्धव इसमें कोरे, आगम न धर्म का ही वर्णन॥
अब इस वेदवाणी का उद्धव, सबसे पहले ब्रह्मा जी ने।
किया उपदेश अक्षरशः ज्येष्ठ पुत्र मनु को अपने॥

भृगु अंगिरा मरीचि पुलह, अत्रि पुलस्त्य क्रतु ने।
ग्रहण किया उपदेश मनु से, इन सात महर्षियों ने॥
फिर ब्रह्म ऋषियों की सन्तान, देव, दानव मनुष्य विद्याधर।
गुह्यक गन्धर्व सिद्ध चारण, नाग किन्नर किम्पुरुष किन्नर॥
इन सभी जातियों ने उद्धव, अपने अपने मननीय पूर्वज।
इन्हीं ब्रह्मर्षियों से, प्राप्त किया था धर्म आगम॥

इन्हीं जातियों व पंथकियों के सत रज तम गुण के कारण।
इनके इष्ट भाव - नाना नाहें, उपजहैं सबका भिन्न भिन्न॥
उनमें और उनकी शाखाओं में अनेक भेद होने के कारण।
वेद वाणी का प्रकृति अनुसार भिन्न भिन्न अर्थ करे ग्रहण॥ हो
सच झूठ से उनको ये, वाणी ही ऐसी अलौकिक।
कि उससे विभिन्न अर्थ, निकलते ही हैं स्वाभाविक॥
समान भेद उपदेशों से भी भिन्न होती मनुष्य बुद्धि।
कुछ हो जाने बिना विचार, वेद विरुद्ध धरखड़ अवलम्बी॥
मेरी माया से मोहित हो, [redacted] अपने अपने धर्म संस्कार, हैं।
कल्याण साधन अनेक बताते, अपनी अपनी रुचि अनुसार॥
पूर्व मीमांसक धर्म को, साहित्याचार्य यश को बताते।
कामशास्त्री काम को, दृढ़ नीतिकार ऐश्वर्य बताते॥
योगवेत्ता सत्य - शमदम को, त्यागी त्याग को बताते।
लोकातीत भोग को ही, जीवन का परम लाभ बताते॥
यज्ञ तप दान व्रत यम नियम इन्हें कर्मयोगी पुरुषार्थ बताते। दो।
पर कर्मों से जो लाभ मिले, उससे अधिक नाशवान होते॥
कर्मों का फल समाप्त होने पर उन्हें मिलता दुःख ही महान।
और सच झूठ से अति, अन्तिम गति घोर अज्ञान॥
उनसे जो सुख मिलता है, वह तुच्छ नगण्य उथला।
लोक असूया दोष कारण, शोक से परिपूर्ण उथला॥
जो सब ओर से निरपेक्ष किसी से कोई सम्बन्ध न रखता। दो।
किसी भी कर्म या फलादि, की आवश्यकता न रखता॥ ६।
अपना अन्तःकरण सब प्रकार, कर चुका मुझे समर्पित।
परमानन्द स्वरूप में उसकी, आत्मारूप होना स्फुरित॥

उहव इससे वह जिस सुख का अनुभव करता।
वह विषय लोलुप प्राणियों को किसी प्रकार मिल नहीं सकता।।
जो संग्रह परिग्रह से, रहित और अकिंचन उहव)
जो इन्द्रियों पर विजय पा, शान्त समदर्शी हो गया वह उहव॥
जो मेरी प्राप्ति से ही, मेरे सान्निध्य का करे अनुभव) दोहा।
उहव वह सदा सर्वदा, करे पूर्ण सन्तोष का अनुभव ॥
जिसने भी अपने आपको, मुझे सौंप दिया उहव।
मुझे छोड़ न ब्रह्मा और ना इन्द्र का पद चाहे उहव।।
ना सम्राट बनने की इच्छा, ना रसातल राज्य चाहता।
बड़ी- बड़ी सिद्धि और, मोक्ष तक की नहीं इच्छा।।
मुझे जितने प्रिय हैं, तुम जैसे भक्त उहवजी।
उतने प्रिय ब्रह्मा शंकर दाऊ लक्ष्मी या आत्मा भी नहीं।।
जो जग चिन्तन से उपरत हो, मुझमें ही तल्लीन रहता।
राग-द्वेष न रखकर सबके, प्रति समान दृष्टि रखता॥ } दोहा।
उन महात्मा के पीछे मैं, घूमा करता यही सोचकर।
पावन होऊं चरण धूलि, गिरे मेरे ऊपर उड़कर।।

अहंता ममता ना काया में संग्रह परिग्रह से रहित है।
चित्त मेरे रंग में रंगा, वासनाओं से उपरत है॥
और जो अपनी महत्ता के कारण स्वभाव से।
समस्त प्राणियों के प्रति दया प्रेम का भाव रखते॥
जिस परमानन्द स्वरूप का उन्हें अनुभव होता है।
उसे ना जाने और कोई, क्योंकि प्राप्त हो निरपेक्षता से॥ } दोहा।
जो भक्त जितेन्द्रिय नहीं, विषय बाधा पहुँचाये उसे।
अर्थात उहव विषयाधिकार, अपनी ओर [redacted] खींचे उसे।।

जो अनन्य भक्ति बढ़ने वाली, मेरी भक्ति के समान है।
प्रायः पराजित नहीं होता, जो विषम विकारों से॥
जैसे धधकती आग उद्धव, लकड़ी को जलाकर राख करती।
वैसे ही मेरी भक्ति भी, पाप को पूर्णतः जला डालती॥ } दो।
योग साधन शास्त्र विज्ञान, जप-पाठ और तप त्याग।
उसने नहीं समर्थ उद्धव, भक्ति से मैं होता प्राप्त॥
अनन्य भक्ति और कृपा, से ही पकड़ में आता।
मुझे प्राप्त करने का, यह उपाय मुझे लुभाता॥
मेरी अनन्य भक्ति उनको भी, जाति दोष से मुक्त करती।
उद्धव जो है चाण्डाल, वैश्य और जन्म से ही॥
इसके विपरीत जो मेरी, भक्ति से वंचित हैं उद्धव।
उनके चित्त को विप्र भी, पावन करने में असमर्थ॥ } दो।
जब तक ये सारा शरीर, पुलकित नहीं हो जाता।
उसका चित्त पिघलकर, गद्गद नहीं हो जाता॥
उद्धव आनन्द के आंसू, आँखों से छलके ना जबतक।
भक्ति की बाढ़ में चित्त डूबे या उतरे ना जबतक॥
अपने आपको भूल जाने और, मुझे पाने की ना हो कामना।
तब तक उसके मुक्त होने की, नहीं है कोई सम्भावना॥
जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद, चित्त बहता रहता पिघलकर।
रोने का ना हुए मांना कभी, हँसने लगता खिलखिलाकर॥
कभी ऊँचे स्वर में गाने लगता, तो कहीं नाचने लगता।
उद्धव मेरा भागत सारे, संसार को पवित्र करता॥
जैसे आग में तपकर सोना, मैल छोड़ निखर जाता। } दोहा
वैसे ही भक्त विषय मुक्त हो, मुझको ही प्राप्त हो जाता। }
ज्यों ज्यों चित्त का मैल धुलता, करके श्रवण कीर्तन।
त्यों त्यों उसे सूक्ष्म वस्तु के, होने लगते हैं दर्शन॥

जैसे अंजन के द्वारा, नेत्रों का दोष मिटने पर उद्धवजी।
उनमें सूक्ष्म वस्तुओं को, देखने की शक्ति आने लगती ॥ } दोहा।

जो करे विषय चिन्तन सदा, चित्त विषयों में फँस जाता।
और जो करे स्मरण मेरा, मुझमें ही तल्लीन हो जाता ॥
अतः तुम दूसरे साधनों और फलों का छोड़कर चिन्तन।
मेरा और केवल मेरा ही, उद्धव जी करो भजन ॥
प्यारे उद्धव मेरे अतिरिक्त, यहाँ तो कुछ भी नहीं।
जो है वो सपने जैसा है, सब कुछ क्षणिक भंगुर ही ॥
अतः मेरे चिन्तन से तुम, अपना चित्त शुद्ध कर लो।
और उसे दृढ़ निश्चय से, एकाग्रता से मुझमें लगा दो ॥

उद्धव सभी पुरुष स्त्रियों और उनके प्रेमियों का संग छोड़कर } दोहा।
करे मेरा ही चिन्तन, एकान्त स्थान में बैठकर ॥ }
ऐसे क्लेश अत्यन्त पड़ते, स्त्रियों - लम्पट के संग से।
ऐसी फजीहत ना होती, और किसी के भी संग से ॥
उद्धवजी ने पूछा - भगवन, मुमुक्षु आपका कैसे ध्यान करे वो किस, प्रकार और किस भाव से ॥
भगवान श्री कृष्ण यूं बोले उद्धव एक ऐसा आसन लेकर } दोहा
~~[illegible]~~
ना ऊँचा ना नीचा हो, बैठकर मेरु शरीर को सीधा कर ॥
और तब उद्धव हाथों को अपनी गोदी में रख कर।
फिर अपनी दृष्टि जमाये नासिका के अग्र भाग पर ॥
प्राणायाम से नाड़ी शोधन करे पूरक कुम्भक रेचक।
और फिर करे विपरीत रेचक कुम्भक और पूरक ॥
उद्धव प्राणायाम का अभ्यास धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए। दो।
और साथ में इन्द्रियों को जीतने का अभ्यास करना चाहिए ॥ दो

हृदय में ॐकार चिन्तन कर, प्राण द्वारा ले जाये ऊपर।
और उसमें अट्टहास के, समान करे अपना स्वर विस्तार॥
ध्यान रहे उड्डन कि इस, स्वर का तांता ना टूटे कभी।
इस प्रकार प्राणायाम का, अभ्यास करे उड्डन जी॥
ॐकार सहित प्राणायाम का, हर दिन में तीन बार।
करें अभ्यास उड्डन जी, हर बार में दस-दस बार॥
इतना विश्वास करो उड्डन, ये नियम पालन करते ही॥
प्राण वायु वश में हो जाये, एक महीने के अन्दर ही॥ दोहा
अब ऐसा करे चिन्तन, कि उसका हृदय एक कमल।
और वह कमल शरीर में, इसप्रकार स्थित है उड्डन॥
कि उस कमल की डंडी, ऊपर की ओर है उड्डन।
ध्यान रहे
और उसका मुँह, नीचे की ओर है उड्डन॥
अब तुम ध्यान करती रहो उड्डन ऐसा चिन्तन कर। दोहा
कमल का मुख खिला हुआ, अब ऊपर की ओर होकर॥
अब सोचे उस खिले कमल की, आठ पंखुड़ियां है उड्डन।
और उनके बीचों बीच, पीली कर्णिका है उड्डन॥
अब सूर्य-चन्द्रमा अग्नि का, न्यास करे कर्णिका पर।
करे स्मरण मेरे रूप का, तदन्तर अग्नि के अन्दर॥
उड्डन बड़ा ही सुडौल है, मेरे अंगों का गठन।
रोम रोम से शान्ति टपके, अतुलनीय सुन्दर मुखकमल॥
घुटनों तक लम्बी भुजा, ग्रीवा बड़ी मनोहर सुन्दर।
मरकतमणि सम चिकने कपोल, मन्द मन्द मुस्कान मुख पर।
दोनों ओर के कान बराबर, उनमें मकराकृत कुण्डल।
उड्डन बड़े प्यारे लगते हैं, करते हुए झिलमिल झिलमिल॥ दोहा
श्यामल शरीर पर पीताम्बर, वर्षाकालीन मेघ समान।
श्रीवत्स, लक्ष्मीजी चिन्ह, दायें बायें विराजमान॥

शंख-चक्र, गदा और पद्म, हाथों में किये धारण।
नुपूर-चरणोंमें, गलेमें, वनमाला कौस्तुभमणि चमचम॥
अपने अपने स्थान पर चमचमाते किरीट कंगन।
शोभायमान हो रहे, करधनी और बाजूबंद॥
अत्यन्त सुन्दर हृदयहारी, उद्धव मेरा एक एक अंग।
कृपा प्रसाद वही करती, मेरी प्यार भरी चितवन॥
मेरे इस सुकुमार रूप का, ध्यान करना चाहिए उद्धव।
और अपने मन को एक एक, अंग में लगाना चाहिए उद्धव॥ } दोहा

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए, मन द्वारा इन्द्रियों को।
उनके विषय से खींचकर, मुझ में लगा दे मन को॥
बुद्धि रूपी सारथि मदद से, मन को लगाये मुझमें ही।
अन्य सभी साधकों इच्छा, लगाये मन किसी अंग में ही॥
सारे शरीर का ध्यान हो तो, एक स्थान में स्थिर करे। } दोहा
अन्य अंगों का चिन्तन न कर, केवल मुख का चिन्तन करे॥
मुख पर चित्त ठहरे तो, फिर स्थिर करे आकाश में।
न दिखे आकाश चिन्तन करना, आरूढ़ हो मेरे स्वरूप में॥
उद्धव जब इस प्रकार चित्त समाहित हो जाता।
तब अपने में मुझे और मुझमें स्वयं को अनुभव करता॥
जो योगी इस प्रकार मुझमें, चित्त का संयम करता है। } दोहा
उसके चित्त से कर्म भ्रम, शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है॥

पन्द्रहवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद्भागवत का, पन्द्रहवां अध्याय ग्यारहवां स्कन्ध।
जिसमें बताये भिन्न भिन्न, सिद्धियों के नाम लक्षण॥

श्री कृष्ण कहते हैं-उद्धव जब लग जाना हो। थोड़ा काम। } क्षण
मन उसके सामने बहुत्वे होती है सिद्धि यों इसरिया॥

उद्धव बोले - किस धारणा से प्राप्त होती कौन-सी सिद्धि।
और बताये हमको भगवन् सिद्धि होती है कितनी॥
भगवान श्री कृष्ण से बोले सुनो उद्धव अब ध्यान लगाकर।
पातञ्जली योगियों ने अट्ठारह सिद्धि दी बतलाय॥
उनमें से आठ सिद्धियां तो प्रधान रूप मुझमें ही रहती। } दो
दूसरों में कर्म धर्म इस सत्वगुण के विकास से भी मिल जाती॥

अब सुनो सिद्धियों का विवरण तीन सिद्धियां तो शरीर की।
वे हैं अणिमा महिमा लघिमा हैं प्राप्ति सिद्धि इन्द्रियों की॥
प्राकाम्य सिद्धि पदार्थों का मनचाहे अनुभव इच्छानुसार।
ईशिता सिद्धि करे संचालन माया के कार्य इच्छानुसार॥
विषयों में रह आसक्त न होना है वशिता सिद्धि का काम। } दोहा
सुख की सीमा तक पहुँच जाना, कामावसायिता का काम॥

ये आठों सिद्धि मुझमें, स्वभाव से ही रहती हैं।
और जिन्हें मैं देता हूँ, उन्हें अनायास प्राप्त होती हैं॥
और भी कई सिद्धियां हैं, दूरश्रवण मनोजव का होना।
दूर की वस्तु देख लेना, दूर की बात सुन लेना॥
मन के साथ ही शरीर का उस स्थान पर पहुँच जाना।
जैसी भी इच्छा हो वैसा ही रूप बना लेना॥
उद्धव दूसरों के शरीर में आसानी से प्रवेश करना।
और जब भी कभी इच्छा हो तभी शरीर को छोड़ना॥
अप्सराओं के संग होनेवाली देव क्रीड़ा का दर्शन। } दोहा
संकल्प की सिद्धि और, बिना बन्धु बान्धव के आज्ञापालन॥

तुम्हारे उद्धव इस तरह से, दस सिद्धियां होती हैं।
जो सदैव सत्त्वगुण के, विशेष विकास से होती हैं।।
इसके अतिरिक्त योगियों को, प्राप्त होती हैं पाँच सिद्धियां भी।
सभी प्राणों को जानने लेना, भूत भविष्य वर्तमान की।।
शीत-उष्ण सुख दुःख आदि, द्वन्द्वों के परा में न होना।
तीसरी सिद्धि-दूसरे की, मन आदि की बात जानलेना।।
अग्नि सूर्य जल विष आदि की, शक्ति को स्तम्भित कर देना। } दोहा
और पांचवी सिद्धि उद्धव, किसी की से पराजित न होना। } Part-87
प्रिय उद्धव योगाचारण से, प्राप्त होती जो सिद्धियाँ।
उनका मैंने नाम-निर्देश के साथ वर्णन कर दिया।।
अब प्यारे उद्धव सुनो मैं, तुम्हें बतलाता हूँ वे भी।
कि किस धारणा से कौनसी, सिद्धि कैसे प्राप्त होती।।
प्रिय उद्धव मेरा ही शरीर है पंचभूतों की मात्रा एं।
जो साधक करता है मेरे, उसी रूप की उपासनाएं।।
मन को निराकार बना जब, साधक उसी में लगा देता।
मेरे शरीर की अतिरिक्त, अन्य वस्तु का चिन्तन न करता।
उस साधक को प्राप्त होती, सिद्धि अणिमा नाम की। } दोहा
अर्थात् अणु में प्रवेश की, शक्ति भी प्राप्त हो जाती।।
महत्तत्व के रूप में भी, मैं ही प्रकाशित हो रहा हूं।
और उस रूप में समस्त, मनोहारिक ज्ञानों का केन्द्र हूं।।
जो उस रूप में अपने मन को, महत्तत्वाकार कर तन्मय करता।
प्यारे उद्धव वह साधक, महिमा सिद्धि प्राप्त करता।।
आकाशादि पंचभूतों में, मन लगाने से महत्ता प्राप्त होती। } क्रोड
प्यारे उद्धव यह भी महिमा, सिद्धि के अन्तर्गत ही।।
उद्धव जो योगी वायु आदि, चार भूतों के परमाणुओं को।
मेरा ही रूप समझकर, तदाकार कर देता चित्त को।।

प्यारे उद्धव उस साधक को, लघिमा सिद्धि हो जाती प्राप्त।
प्राप्त हो जाना परमाणु सम, वस्तु बनाने का सामर्थ्य॥

उद्धव जो सात्त्विक अहंकार को, मेरा ही स्वरूप समझकर।
मेरे उसी रूप को अपने, चित्त में कर लेना है धारण॥ दोहा
उद्धव वह सामर्थ्य इन्द्रियों का, हो जाना है अभिष्ठाता।
इस प्रकार वह 'प्राप्ति' नाम की, सिद्धि को प्राप्त करना॥

जो महत्तत्वाभिमानी रुद्र, आत्मा में चित्त स्थिर करना।
वह प्रकृति जन्मा की 'प्राकाम्य' सिद्धि प्राप्त करना॥
जो त्रिगुणमयी माया के स्वामी, मेरे कालस्वरूप विश्वरूप की।
धारणा कर शरीर जीवों को, इच्छानुसार प्रेरित करने की॥

प्यारे उद्धव जो साधक भी, ऐसी सामर्थ्य प्राप्त करना। दोहा
वह फलस्वरूप मेरी 'ईशित्व' सिद्धि को प्राप्त करना॥

जो योगी नारायण स्वरूप में अपना मन लगा देना।
मेरे स्वाभाविक गुण दिखने और गरिमा सिद्धि प्राप्त करना॥
जो मेरे पुरुष स्वरूप में, अपना मन स्थित कर लेना। दोहा
वह कामावसायिता नामक, सिद्धि को प्राप्त कर लेना॥

उद्धव इस सिद्धि के मिलते, सारी कामनाएं पूर्ण हो जाती।
दूसरे अर्थों में समझें कि, सारी कामनाएं समाप्त हो जाती॥
जो श्वेत द्वीप स्वामी रूप की, चित्त में धारणा करता है।
वह भूख प्यास जन्म-मृत्यु, शोक मोह से मुक्त हो जाता है॥

प्यारे उद्धव मैं ही हूँ, समष्टि प्राणरूप आकाशात्मा।
जो मेरे इस स्वरूप को, करे चिन्तन अनाहत नाद का॥
वह आकाश में उपलब्ध, प्राणियों की बोली समझ सकता।
और उद्धव वह इसी तरह, "दूरश्रवण" सिद्धि सम्पन्न हो जाता॥
जो नेत्रों को सूर्य में और, सूर्य नेत्र में संयुक्त करता। दोहा
और दोनों के संयोग में, मन ही मन मेरा ध्यान करता॥

वे संसार को देख सकते हैं उनकी दृष्टि सूक्ष्म हो जाती।
और इस तरह उनको दूरदर्शन सिद्धि प्राप्त हो जाती॥

जो मन शरीर को प्राण वायु संग मेरे साथ संयुक्त करेगा।
और करे मेरी धारणा 'मनोजव' सिद्धि प्राप्त करना॥ दोहा
इसके प्रभाव से वह योगी, जहाँ जाने का संकल्प करना।
प्यारे उद्धव उसका शरीर, उसी क्षण वहीं पहुँच जाना॥

जिस समय योगी मन को बनाकर उड़ाने का कारण।
चाहे किसी भी देवता का, वैसा ही करना रूप धारण॥
तो वह मन के अनुकूल, वैसा ही रूप करना धारण।
अपने चित्त को मेरे संग जोड़, उद्धव मैं हूँ उसका कारण॥

जो योगी करना चाहे उद्धव, प्रवेश दूसरे के शरीर में। दोहा
वह ऐसी करे भावना कि, वह है उसी शरीर में॥
ऐसा करने से उसका, प्राण वायु धारण कर लेना।
अपना शरीर छोड़कर, दूसरे शरीर में प्रवेश करजाना॥

यदि शरीर त्यागना हो तो, रुई से गुदा द्वार दबाकर। दोहा
प्राण वायु को क्रमशः हृदय, वक्ष, कण्ठ और मस्तक में लेजाकर॥
फिर ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा उसे, ब्रह्म में लीन करके।
प्यारे उद्धव तत्पश्चात वह शरीर का परित्याग कर दे॥
यदि उसे देव-विहार लोकों में, इच्छा हो क्रीड़ा करने की।
तो वह साधक करे भावना, मेरे शुद्ध सत्वमय शरीर की॥
ऐसा करने से सत्वगुण की, सुन्दरियां अंशस्वरूप उद्धव।
विमान पर चढ़कर उनके, पास पहुँच जाती हैं उद्धव॥

मेरे सत्यसंकल्प स्वरूप में, जिसने चित्त कर दिया स्थिर। दोहा
मन से जो संकल्प करे, सिद्ध हो जाते उसी पल॥

ईशित्व और वशित्व दोनों सिद्धियों का मैं स्वामी।
इसलिए टाल नहीं सकता, कभी कोई आज्ञा मेरी॥

जो कर चिन्तन मेरे रूप का उसी भाव में मुक्त हो जाता।
मेरे समान उसकी आज्ञा को, कोई टाल नहीं सकता॥

जिसका चित्त शुद्ध हो गया, करते करते मेरी भक्ति। दो
उसकी बुद्धि जान लेती है, जन्म मृत्यु अदृष्ट विधियों को भी॥ ह
तुम्हारे उद्धव और तो क्या भूत भविष्य वर्तमान की।
उस साधक को सारी बातें, मालूम हो जाती तत्क्षण ही॥

जैसे जल के द्वारा जल में, रहने वाले प्राणी का नाश न होता। दो
वैसे ही जिसने चित्त लगाया उसे कोई नष्ट कर नहीं सकता॥ ह।
तुम उद्धव जो मेरे अवतारों का, स्थिर चित्त करता ध्यान।
वह अजेय हो जाता, निश्चित है उसका कल्याण॥

इस प्रकार जो करे उपासना, योग धारणा से करे चिन्तन। दोहा
उसे सभी सिद्धियाँ मिलें, जिनका मैंने किया है वर्णन॥
उद्धव जिसने प्राण मन और इन्द्रियों पर विजय पा ली।
उसके लिए नहीं दुर्लभ, कोई ऐसी कोई भी सिद्धि॥
परन्तु श्रेष्ठ पुरुष कहते हैं, जो मुझसे एक हो रहे।
भक्ति योग या ज्ञान योग से, योगों का अभ्यास कर रहे॥
उनके लिए इन सिद्धियों का, प्राप्त होना एक विघ्न ही।
उनके समय का दुरुपयोग, क्योंकि इसके कारण व्यर्थ ही॥
तप मन्त्रादि के द्वारा, जितनी सिद्धि प्राप्त होती।
वे सारी सिद्धियाँ उद्धव, योग के द्वारा मिल जाती॥
परन्तु मेरे सारूप्य मोक्ष, जो है योग की अन्तिम सीमा। दोहा
किसी भी साधन से ना मिले, मुझमें चित्त लगाये बिना।
ब्रह्मणादियों ने साधन बतलाये, योग सांख्य धर्म आदि।
उनका और सारी सिद्धियों का, उद्धव प्रभु स्वामी मैं ही॥

~~जैसे पंच भूतों~~
जैसे स्थूल पंचभूतों में, सर्वत्र सूक्ष्म महाभूत ही ।
सुसंगोहर भीतर भेद नहीं, निरावरण आत्मा वैसे ही ॥ दो हा

सोलहवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद्भागवत का, सोलहवां अध्याय (एकादश स्कन्ध)
जिसमें कथा कही गया है, प्रभु की विभूतियों का वर्णन ॥
उद्धव जी बोले- भगवन, आप स्वयं हैं परब्रह्म ।
ना आपका आदि ही है, और न ही कोई है अन्त ॥
आप अद्वितीय तत्व हैं, आप ही रहित आवरण ।
आप ही पदार्थों की स्थिति, उत्पत्ति रक्षा प्रलय के कारण ॥ दो
भगवन आप स्थित हैं, सभी तरह के प्राणियों में,
परन्तु जिन्होंने मन को, न ही किया है अपने वश में ॥
भगवन वे भला आपको, कैसे जान सकते हैं ।
आपकी यथोचित उपासना, ब्रह्मवेत्ता ही करते हैं ॥
जिन रूप-विभूतियों की, भक्ति संग उपासना करके ।
साधक सिद्धि प्राप्त करते, वह आप कहिए मुझसे ॥
प्राणियों की अन्तरात्मा गुप्त रूप लीला करते ।
देख नहीं पाता कोई, आप तो सबको देखते ॥
पृथ्वी स्वर्ग पाताल में, जो जो विभूतियां भगवन ।
उनकी जिह्व वर्णन में, करना हूं चरण कमल वन्दन ॥ दो हा

श्री कृष्ण बोले- प्यारे उद्धव जब महाभारत युद्ध छिड़ा था ।
तब कुरुक्षेत्र में अर्जुन ने मुझसे यही प्रश्न किया था ॥
तब अर्जुन के मन में, खेद हुई थी यही धारणा ।
अपने लोगों को मारकर, राज्य लेकर क्या करना ॥

और
मैं मारने वाला मैं हूँ, भरने वाले - यह सोचकर।
उस अर्जुन मन हीमन, हो गया मुह से उपरत॥

उस समय अर्जुन को यही प्रश्न करने पड़ा।
तब बहुत-सी युक्तियों से मैंने उसको समझाया॥

मैं ही समस्त प्राणियों का आत्मा हितैषी भगवन। } दोहा
समस्त पदार्थों के रूप में, उत्पत्ति स्थिति प्रलय कारण॥

गतिशील पदार्थों की गति उद्धव जी मैं ही काल हूँ।
सभी शुभ गुण पदार्थों का मैं ही स्वाभाविक गुण हूँ॥
गुण युक्त वस्तुओं में, प्रथम कार्य सूत्रात्मा हूँ।
महान्तों में ज्ञानशक्ति प्रधान, प्रथम कार्य महत्तत्व हूँ॥
सूक्ष्म वस्तुओं में जीव हूँ, वश में होने वाला मन हूँ। } दो ४
उद्धव मैं वेदों का, अभिव्यक्ति स्थान हिरण्यगर्भ हूँ॥
मन्त्रों में तीन मात्राओं वाला अ उ म ओंकार हूँ।
मैं अक्षरों में आकार, छन्दों में त्रिपदा गायत्री हूँ॥

समस्त देवताओं में इन्द्र, आठ वसुओं में अग्नि हूँ। } दो ५
बारह आदित्यों में विष्णु, ग्यारह रुद्र में नीललोहित हूँ॥

महर्षियों में भृगु हूँ, राजर्षियों में मनु हूँ।
देवर्षियों में नारद, गौओं में कामधेनु हूँ॥
सिद्धेश्वरों में कपिल हूँ, पक्षियों में गरुड़ हूँ।
प्रजापतियों में दक्ष, और पितरों में अर्यमा हूँ॥

दैत्यों में प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ समझो। } दो ६
ओषधियों में सोमरस, और यक्ष में कुबेर हूँ समझो॥

गजराजों में ऐरावत, जलचरों में वरुण हूँ।
चमकीलों में सूर्य हूँ, मनुष्यों में राजा हूँ॥

मैं घोड़ों में उच्चैःश्रवा घतनओं में सोना हूँ।
ऋषियों में भृगु, गायों में कामधुक् हूँ॥
नागराजों में शेषनाग, जानवरों में सिंह हूँ।
आश्रमों में सन्यास, और वर्णों में ब्राह्मण हूँ॥
नदी नादियों में गंगा, जलाशयों में समुद्र हूँ।
अस्त्र शस्त्र में धनुष, धनुर्धरों में शंकर हूँ॥
निवासस्थान में सुमेरु हूँ, दुर्गम में हिमालय हूँ।
वनस्पतियों में पीपल, और धान्यों में जौ हूँ॥
पुरोहितों में बृहस्पति हूँ, देवों में इन्द्रप्रति हूँ। } दोहा
सेनापतियों में कार्तिकेय, सन्मार्ग प्रवर्तक में ब्रह्मा हूँ॥ }
पंच महायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ, व्रतों में अहिंसा व्रत हूँ।
शुद्धकर्ता में वायु अग्नि, स्थूल जल ज्ञानी आत्मा हूँ॥
आठ दोषों में समाधि, विजय हेतु में मन्त्र बल हूँ।
कौशलों में आत्मा का, रत्नादिकों में विकल्प हूँ॥
स्त्रियों में मनुपत्नि शतरूपा, पुरुषों में स्वयम्भू मनु हूँ। } दोहा
मुनीश्वरों में नारायण, ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार हूँ॥ }
धर्मों में कर्मसंन्यास हूँ, अभय साधन में अनुसंधान हूँ।
अभिप्राय गोपन साधन में, मधुर वचन एवं मौन हूँ॥
स्त्री पुरुष के जोड़ों में, मैं प्रजापति हूँ उद्धव।
जिसके दो भागों को स्त्री, पुरुष का जोड़ा कहा उद्धव॥

[redacted]

सावधान रह जागृत करता, संवत्सररूप काल हूँ मैं। } दोहा
मूलनों में अक्षय हूँ, मंत्रों में मार्गशीर्ष हूँ मैं॥ }

~~मैं सुगंधों में पवित्र पृथ्वी में हूँ।~~

नक्षत्रों में अश्विनि हूँ, मुनियों में सातमुनि हूँ।
जिन्न पिशाचों में भद्रकाली हूँ, देवता और अग्नि हूँ॥
उद्धव मैं सम्पूर्ण व्यापारों में भी कुशल कौशल व्यापार हूँ।
और साथ ही कविओं में मैं भी शुक्राचार्य हूँ॥
सृष्टि उत्पत्ति-लय जन्म मृत्यु ज्ञानों में वासुदेव हूँ॥
उसी अर्थों में तुम उद्धव किंपुरुषों में हनुमान हूँ॥
निधाधरों में सुदर्शन हूँ, जिसने अजगर के कपड़े।
नन्द बाबा को ग्रसा था, मुक्त हुआ प्रभु पादस्पर्श से॥
रत्नों में लाल पद्मराग हूँ, सुन्दरता में कमल कली हूँ।
तृणों में कुश हूँ मैं, हविष्यों में गाय का घी हूँ॥
व्यापारियों में लक्ष्मी, छल-कपट में द्यूत क्रीड़ा हूँ।
तितिक्षुओं की तितिक्षा, सात्विकों में सत्त्व गुण हूँ॥
बलवानों में उत्साह, अर्थों में निष्कामकर्म हूँ।
गन्धर्वों में चित्ररथ, अप्सराओं में पूर्वचित्ति हूँ॥
देवताओं की पूजा में मूर्ति वासुदेव प्रद्युम्न संकर्षण।
अनिरुद्ध, [redacted] हयग्रीव, ब्रह्मा, नारसिंह, ब्रह्मा नारायण॥
इन नौ मूर्तियों में पहली और श्रेष्ठ मूर्ति वासुदेव हूँ।
पर्वतों में स्थिरता और, धरती में शुद्ध गन्ध मैं हूँ॥
मैं जल में रस हूँ उद्धव, तेजों में अग्नि हूँ।
सूर्यचन्द्र तारों में प्रभा, आकाश का गुण शब्द मैं हूँ॥
ब्राह्मण अर्थों में बलि, वीरों में श्रेष्ठ अर्जुन हूँ।
और प्राणियों में उनकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय हूँ॥

मैं ठौर चलने की शक्ति, पालने की शक्ति पाणी में।
वायु से मल त्याग शक्ति, पकड़ने की शक्ति हाथों में॥
जननेन्द्रिय में भोग शक्ति, त्वचा में स्पर्श की शक्ति।
नासिका में सूंघने की शक्ति, नेत्रों में दर्शन की शक्ति॥
रसना में स्वाद की शक्ति, कानों में श्रवण शक्ति में ही है।
उद्धव समस्त इन्द्रियों की, इन्द्रिय शक्ति मैं ही॥
पृथ्वी वायु आकाश जल तेज अहंकार महत्तत्व।
पंचमहाभूत, सत रज तम, और ब्रह्म मैं ही के सब॥
इन तत्वों की गणना उद्धव, लक्षणों से उनका ज्ञान।
ये सब मैं ही हूँ उद्धव, इसका फल तत्व ज्ञान॥
मैं ही ईश्वर मैं ही जीव, मैं ही गुण मैं ही गुणी।
मैं ही सबका आत्मा, मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं॥
यदि गिनने लगूं कभी मैं परमाणुओं की गणना कर सकता।
परन्तु उद्धव मैं अपनी विभूतियों की गणना नहीं कर सकता॥ दोहा

[redacted]

क्योंकि जब मेरे कोटि कोटि, ब्रह्माण्डों की गणना नहीं हो सकती।
तब मेरी विभूतियों की, भी गणना नहीं हो सकती॥
तेज श्री ऐश्वर्य कीर्ति त्याग, तितिक्षा विज्ञान, पराक्रम।
जैसे मेरा ही अंश समझो, जिसमें हों ये सारे गुण॥
संक्षेप में ये विभूति वर्णन, किया तुम्हारे प्रश्नानुसार।
ये सब परमार्थ वस्तु नहीं उद्धव ये है मनोविकार॥ दोहा
क्योंकि सोची जानी सी कोई वस्तु परमार्थ न होती।
तो उद्धव ये उसकी, एक कल्पना ही होती॥

वाणी मन छन्द भाषण से रोको, संकल्प विकल्प बंद करो।
इसके लिए ध्यान करो वश में, इन्द्रियों का दमन करो॥

सात्विक बुद्धि से प्रपंचातीत बुद्धि शक्ति करो उद्धव।
जन्म मृत्यु के पीड़ा में, नहीं भटकना पड़ेगा उद्धव॥

जो बुद्धि के द्वारा वाणी मन वश में ना करता।
कच्चे घड़े में जल जैसा, धन दान तप नष्ट हो जाता॥
संयम करे मन वाणी प्राण, अति सशक्त बुद्धि से ही। } दोहा
ऐसा कर लेने पर उसे, कुछ करना शेष नहीं॥ }

सत्रहवाँ अध्याय

~~[redacted]~~

अब सुनो श्रीमद्भागवत का, सत्रहवाँ अध्याय कृपा करके।
जिसमें सुनाया गया है, वर्णाश्रम धर्म निरूपण॥
उद्धव जी बोले-हे भगवन, करें जो वर्णाश्रम धर्म पालन। } 6/7
उन्हें धर्म उपदेश दिया, प्राप्त हुई भक्ति भगवन॥ }

कैसे धर्म अनुष्ठान करें, अब कृपाकर के बतायें।
जिससे आपके चरणों में, भक्ति प्राप्त हो जाये॥
उठो! महा बाहु साधवर पहले कर हँस रूप अवतार।
ब्रह्मा जी को दिया अपना, परमधर्म उपदेश भगवन॥ } 8/9
अब धर्म मृत्युलोक ना रहा, समय बीत जाने के कारण।
क्योंकि आपको उपदेश किये, बहुत दिन हो गये भगवन॥
पृथ्वी पर ब्रह्मा सभा में, वेद मूर्तिमान रहे विद्यमान।
आपके अतिरिक्त कोई नहीं, जो धर्म संरक्षण करे भगवन॥
इस धर्म के प्रवर्तक रक्षक, और उपदेशक आप ही। } दोहा
जय जय मधु दैत्य मार, वेद बचाये, करो धर्म रक्षा वैसे ही॥ }

जब लीला संवरण कर लेंगे जब आप पृथ्वी तल से।
धर्म का लोप हो जाएगा, फिर कौन बताएगा इसे॥
आप धर्म समझे हैं अतः धर्म वर्णन करें आकर।
जो भक्ति प्राप्त कराये, किसके लिए कहाँ विधान॥

श्रीशुकदेव जी बोले—राजन, जब उद्धव जी ने किया प्रश्न।
सनातन धर्म उपदेश दिया, श्री कृष्ण ने होकर प्रसन्न॥

भगवान श्रीकृष्ण यूं बोले, प्रश्न सुन्दर धर्मसम्पादित कर।
उन धर्मों का देना उपदेश, अब सुनो सावधान होकर॥

उद्धव कल्प के प्रारम्भ में जब सतयुग चल रहा था।
उस समय सभी मनुष्यों का, हंस नामक एक ही वर्ण था॥
उस युग में उद्धव सब लोग, पूर्ण कृत्य होते जन्म से ही।
इसीलिए सतयुग का, एक नाम है कृतयुग भी॥
तब उद्धव सतयुग के समय, वेद केवल था प्रणव ही।
तप, शुचि, दया, सत्य और चार पाद, था वृषभ धारी धर्म भी॥

उस समय के सभी भक्तजन, निष्पाप और परमतत्त्वी।
उपासना करते थे उद्धव, मुक्त हंसरूप परमात्मा की॥

सतयुग समाप्त होने पर हुआ आरम्भ त्रेता युग का।
ऋग्, साम, यजुर्वेद रूप हुई प्रकट त्रयी विद्या॥
उद्धव उस त्रयी विद्या से, होता अध्वर्यु उद्गाता के।
तीन भेदों वाले यज्ञ के, रूप से प्रकट हुआ मैं॥
विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, क्षत्रिय पैदा हुए भुजा से।
जंघा से वैश्य और शूद्र जन्मे थे चरणों से॥

[redacted]

उदरस्थल से गृहस्थाश्रम, हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम।
मस्तकस्थल से वानप्रस्थ, मस्तक से सन्यासाश्रम॥
इन चार आश्रम के लोगों के, स्वभाव भी उहुत।
उहुत के जन्म के अनुसार, उत्तम मध्यम और अधम॥ दोहा।
अर्थात उत्तम स्थानों से, उत्पन्न वर्ण आश्रम।
और गये
आदे उहुत इन सभी के, स्वभाव भी होते उत्तम॥
और इसी प्रकार जिनके, पैदा होने वाले स्थान के अधम।
आदे उहुत इन सभी के, स्वभाव भी हो गये अधम॥

मनसा पवित्रता सन्तोष क्षमाशीलता, शम दम।
सत्यापन मेरी भक्ति, दया, सत्य स्वभाव के होते ब्राह्मण॥ दोहा।

[redacted]
अब सुनो क्षत्रिय वर्ण स्वभाव, तेज, बल, धैर्य वीरता।
ब्राह्मण भक्ति उद्योगशीलता, दृढ़कर्म, उदारता, स्थिरता॥
ब्राह्मणों की सेवा
अब सुनो वैश्य वर्ण स्वभाव, [redacted] आस्तिकता।
धन संचय से सन्तुष्ट न होना, दम्भहीनता, दानशीलता॥
अब सुनो शूद्र वर्ण स्वभाव, जो मिल जाये सन्तुष्ट रहना।
ब्राह्मण गौ और देवताओं की निष्कपट भाव सेवा करना॥
अब सुनो अन्त्यजों के स्वभाव, झूठ बोलना चोरी करना।
ईश्वर की परवाह न करना, काम क्रोध तृष्णा वश रहना॥
उड़ा जो चारों वर्ण आश्रमों हेतु, यही है साधारण धर्म।
[redacted] दोहा।
हिंसा चोरी काम क्रोध लोभ, से बचे रहे सत्य पर दृढ़॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य वर्ण, गर्भाधान संस्कार कर्म से।
यज्ञोपवीत से रहे मनोपर्यन्त, संस्कार द्वितीय जन्म लेते॥

आचार्यों के बुलाने पर, वेदों का अध्ययन करे।
इन्द्रिया वश में रखे, वेद सार पर विचार करे॥

मेखला मृगचर्म रुद्राक्षमाला, यज्ञोपवीत कमण्डल धारण।
सिर पर जटा, वस्त्र गाढ़े, वर्णानुसार दण्ड पूरा करे धारण॥
स्नान भोजन हवन जप और मल-मूत्र त्यागते मौन रहे।
कक्षा व पुष्पेन्द्रिय के बाल, नाखून काटने से बचा रहे॥

इन्द्रियों पर संयम रखे, ब्रह्मचर्य का पालन करे।
स्वप्नदोष हो तो स्नान प्राणायाम गायत्री जाप करे॥
ब्रह्मचारी करे अग्नि सूर्य गौ, गुरु, देव उपासना। } दोहा।
और सायं प्रातः मौन रह, गायत्री जप सन्ध्योपासना॥ }
गुरु मेरा ही स्वरूप है, उनका तिरस्कार ना करें।
उन्हें साधारण मनुष्य समझ, उनका तिरस्कार ना करे॥

सायं प्रातः जो मिले भिक्षा, गुरु के चरणों में रख दे। } दोहा
नतमस्तक आज्ञानुसार, भिक्षा का उपयोग करे॥ }
गुरु यदि चलते हों तो, उनके पीछे पीछे जावे।
उनके सोने पर शुद्ध हो, सावधानी से सो जावे॥

गुरु घर के तो द्वार दर्शावे, बैठे हों तो खड़ा रहे।
हाथ जोड़कर सदा सर्वदा, सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रहे॥
विद्याध्ययन के समय तक, सभी भोगों से दूर रहे। } दोहा।
ब्रह्मचर्य को करे पालन, गुरुकुल में निवास करे॥ }

ब्रह्मलोक में जाने का, यदि है ब्रह्मचारी का मन।
तो उसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, व्रत धारण करना आजीवन॥
वेदों के स्वाध्याय के लिए, अपना सारा ही जीवन।
आचार्यों की सेवा में, कर देना आहुति समर्पण॥

ऐसा ब्रह्मचारी सत्पुरुष सम्पन्न होता ब्रह्म तेजस्वी
उसके सारे पाप, नष्ट हो जाते उसके ॥

अग्नि गुरु अपने शरीर-प्राणियों में मेरी ही उपासना ।
और मुझे सबके हृदय विराजे एक ही परमात्मा ॥ } दोहा ।
ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी मलेरवरी से दूर रहे ।
मैथुन करते जोड़ियों पर कभी दृष्टि पात न करे ॥
शुचि, आचमन स्नान वन्दन, मन वाणी शरीर का संयम ।
यह है, ब्रह्मचारी वानप्रस्थ, सन्यासी सभी को ये नियम ॥
नैष्ठिक ब्रह्मचारी नियम पालन कर तेजस्वी हो जाता ।
तब ले कर्म संस्कार भस्म हो, आत्मा करण शुद्ध हो जाता ॥ } दोहा ।
यदि गृहस्थी बनना चाहे आचार्यों को दक्षिणा देकर ।
समावर्तन संस्कार करावे, आचार्यों की आज्ञा लेकर ॥
ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद, गृहस्थाश्रम प्रवेश करे ।
उसके बाद क्रमशः आगले, आश्रम में प्रवेश करे ॥

किन्तु उसका मेरा आज्ञाकारी, बने बिन आश्रम रहकर ।
स्वेच्छाचार में न प्रवृत्त हो, विपरीत आश्रम बदल कर ॥

यदि ब्रह्मचारी चाहे बाद में, गृहस्थ आश्रम स्वीकार करना } दो
तो करे शास्त्रोक्त लक्षण सम्पन्न, कुलीन कन्या से विवाह संस्कार ॥ दो

कन्या हो अपने वर्ण की, अथवा अपने से छोटी अवस्था ।
यदि अन्य वर्ण की कन्या तो, निम्नवर्ण कन्या से कर सकता ॥
यज्ञ अध्ययन दान अधिकार है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को । } दोहा ।
पर दानलेने पढ़ाने और यज्ञ कराने का ब्राह्मण को ॥
उन ब्राह्मण को चाहिए कि, इन वृत्तियों से प्रतिग्रह करे ।
दानलेने वाली वृत्तियों को, तत्तेज यश नष्टकर्म समझे ॥

दाने न यज्ञ कराने हारा, अपना जीवन भाषण करे।
दोष दीखे तो रखेलों में, पड़े दाने चुन निर्वाह करे।

ब्राह्मण शरीर अत्यन्त दुर्लभ, न केवल विषय भोग हेतू।
बल्कि कठिन तप करके, फिर मोक्ष-प्राप्ति हेतू॥
जो ब्राह्मण घर में रहकर करे निष्कामभाव धर्म पालन। } दोहा।
धरती पर पड़े दाने चुनकर, निर्वाह करे अपना जीवन॥ }

जो अपना शरीर प्राण, अन्नकण सुखे दे देना।
वह ब्राह्मण बिना सन्देह, परमपद प्राप्त कर लेना॥

उदाहरण।
जो लोग बचाते हैं, विपदा में पड़े ब्राह्मणकुल।
ज्यों डूबते को बचाये नौका, मैं भी बचाता हूँ उनको॥

राजा पिता समान बनकर, सारी प्रजा का उद्धार करे। } दोहा।
और धीर होकर स्वयं, अपना भी उद्धार करे। }

जो राजा इस प्रकार करे, अपनी प्रजा की रक्षा।
विमान से स्वर्ग में जाकर, इन्द्र समान सुख भोगता॥

यदि ब्राह्मण अध्यापन और यज्ञ से ना करसके जीवन यापन। दृढ़
सारोकार का आश्रय लो, जबतक विपत्ति का नहीं समापन हो।
क्षत्रिय वृत्ति से काम चलावे, यदि है बहुत बड़ी आपत्ति।
किन्तु किसी भी अवस्था में, न करे सेवा श्वान वृत्ति॥

इसी प्रकार क्षत्रिय भी यदि, प्रजापालन से ना हो गुजारा।
तो फिर वैश्यवृत्ति अपनाये, व्यापार आदि का ले सहारा॥
यदि हो बहुत बड़ी आपत्ति, अध्यापन से गुजारा करले।
पर किसी भी हालत में, श्वान वृत्ति का सहारा न ले॥

CLASSMATE

यह आपत्ति के समय सेवा से निवृत्ति करले / } होई।
शूद्र चलाई चुनने आदि, कारुवृत्ति का आश्रय लेले ॥
परन्तु उद्धव से सब कोई लाभ है विपदा आने पर/
किन्तु फिर ना लोभ करे विपदा समय बीत जाने पर॥
गृहस्थी को चाहिए कि, वेद अध्ययन रूप ब्रह्म यज्ञ/
तर्पणरूप पितृयज्ञ और, करे हवन रूप देव यज्ञ॥
काकबलि आदि को भूतयज्ञ, आनन्दस्वरूप अतिथि यज्ञ॥
इन सभी यज्ञों के द्वारा मेरेस्वरूप भूत ब्रह्मादि देवता। 3द
पितर मनुष्य अन्य प्राणी की प्रतिदिन करतारहे पूजा॥ 4।
गृहस्थी उपार्जित धन से, न्यायविधि से यज्ञ करे।
अपने भृत्य आश्रित प्रजा को किसीभी प्रकार तंग ना करे॥
प्रिय उद्धव गृहस्थ पुरुष कुटुम्ब में आसक्ति ना रखे।
बड़ा कुटुम्ब होनेपरभी, अर्जन में प्रमाद ना करे॥
समझो कि जैसे इसीलोक की सभी वस्तुएं नाशवान हैं।
वैसे ही स्वर्गादि परलोक की, सभी वस्तुएं नाशवान हैं॥
परिवार मित्रजनों गुरुजनों का मिलना जुलना वैसे हो।
जैसे किसी वृक्ष पर, इकट्ठे हो गये पक्षीहो॥
सबको जाना अलग अलग यह सम्बन्ध ज्यादा ना टिकना। 5द।
बस शरीर के रहने तक ही फिर तो कौन किसको पूछना॥ 6।
गृहस्थी इसका कर विचार, पर गृहस्थी में नहीं फँसे।
अनासक्त भाव से रहे, ज्यों आतिथि निवास करे॥
जो शरीर से अहंकार, घरबारादि से ममता ना रखना।
प्यारे उद्धव वह कभी गृहस्थी के फन्दे ना फँसना॥
उद्धव अकिंचन पुरुष, गृहस्थोचित शास्त्रोक्त कर्मों से।
करता हुआ मेरी आराधना, रहे वो बेशक घर में॥

अथवा यदि पुत्रवान हो तो, चला जाए वानप्रस्थ आश्रम।
या वह करले स्वीकार, त्यागे उसे सन्यास आश्रम।। दोहा

जो गृहस्थी में फँसकर, स्त्री पुत्र धन कामना करते।
स्त्रीलम्पट कृपण होकर, मूँ- मोह फंद में पड़ जाते।।
वे हमेशा सोचते रहते, हाय मुँह हो गये मां बाप।
बच्चे अभी छोटे हैं खोरे, मेरे बाद हो जायें अनाथ।।
इस प्रकार गृहस्थी की वासना से, लिप्त हुआ जिसका चित्त।
वह पुरुष विवश भोगों से, कभी नहीं होता है मुक्त।। दोहा

अठारहवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद भागवत का, अठारहवां अध्याय ग्यारहवां स्कन्ध
जिसमें सुनाये गये वानप्रस्थ, और सन्यासी के धर्म।।
श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव, यदि गृहस्थी वानप्रस्थ जाना चाहे।
तो पत्नी पुत्रों को सौंपे, या अपने साथ ले जाये।। दोहा
फिर शान्त चित्त से आयु का, तीसरा भाग वन में बिताये।
वृक्षों की छाल पहने और, कन्द मूल फल ही खाये।।
या मृग छाला से काम चलाये, शरीर का मल ना हटाये।
दातुन स्नान ना करे, धरती पर ही सो जाये।।

ग्रीष्म ऋतु में गृहस्थी अपनी, गर्मी में आग में तपे।
वर्षा ऋतु में खुले मैदान, बारिश की बौछार सहे।।
जाड़े के दिनों में गले तक, पानी में ही डूबा रहे।
उक्त दो प्रकार, तप में समय बीत जाये।। दोहा

कन्द मूलों को केवल, आग में भूनकर खाले।
या समयानुसार फल फूलों से, ही अपना काम चलाले।।

यदि भूलने की आशंका हो तो औरकली या सिल पर कूटले।
अन्यथा दाँतों से ही, चबा-चबा कर खा ले॥
वानप्रस्थी को ज्ञात रहे, कौन-से पदार्थ कहाँ से लाना।
कौन से अपने अनुकूल, कौन सा किस समय खाना॥
इन बातों को जानकर ही, अपने लिए कन्द मूल फल लाये। दो।
देश काल से अनभिज्ञ, लोगों के लाये फल अदि ना खाये॥ दो।
नीवार आदि जंगली अन्न से, चरु पुरोडाश तैयार करे।
और उन्हीं से समयोचित, आगमन वैदिक कर्म करे॥
प्यारे उद्धव वानप्रस्थी इस, भांति का भी विधान करे।
कभी भी वो वेदविहित, प्रयुक्तों द्वारा भजन न करे॥
अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य का विधान किया। } दो।
वेदवेत्ताओं ने जैसा कि, गृहस्थों के लिए किया॥ }

सूखने जाता है मांस उद्धव, करते करते घोर तप।
वानप्रस्थी की इकएक, नस दीखनेलगती है तब॥
तप से कर मेरी आराधना, पहले वो सप्तर्षिलोक जाता। } दो।
क्योंकि तप मेरा स्वरूप है, वहाँ से फिर मेरे पास आता॥ }
जो छोटे मोटे फल हैं, इस महान तप को करता।
अन्त उससे बढ़कर, और सूखने लगे न लोभ॥
जब वह असमर्थ हो जाए, वानप्रस्थ नियम पालन करने में।
या बुढ़ापे के कारण, उसका शरीर लगे कांपने॥
जब इन्द्रियों को आपने से, अन्तःकरण आरोपित करले। } दो।
अपना मन मुझमें लगा, अग्नि में प्रवेश कर ले॥ }

काम्य कर्मों के फलस्वरूप, जो लोक प्राप्त होते हैं।
वे लोक नरकों जैसे ही, दुःखपूर्ण होते हैं॥
यदि यह ज्ञान वानप्रस्थी की, समझ में आ जाये।
और मन में लोक परलोक, से पूरा वैराग्य हो जाये॥

नोविधि पूर्वक यज्ञ की, अग्नियों का परित्याग करके।
प्यारे उद्धव तब वानप्रस्थी, शान्त आप सन्यास लेले॥
वानप्रस्थी सन्यासी होना चाहे तो पहले वेद विधि अनुसार।
यज्ञ से मेरा यजन करे, आहु प्राजापत्य आकार॥ दोहा

उद्धव इसके बाद अपना सर्वस्व ऋत्विज को दे दे।
और सभी यज्ञाग्नियों को, प्राणों में लीन करले॥
और तत्पश्चात किसी भी, स्थान वस्तु व्यक्तियों की।
अपेक्षा ना रखकर भी, करे स्वछन्द विचरण उद्धवजी॥
जब सन्यास लेने लगता, उद्धवजी कोई भी ब्राह्मण।
तब देता विघ्न डालने, कर स्त्री-पुत्र का रूप धारण॥
सोचे - हमारी अवहेलना कर लांघ कर हम लोगों को।
और ये ब्राह्मण हमसे पहले, प्राप्त होने जा रहा परमात्मा को॥ दोहा

यदि सन्यासी कपड़ा पहने, तो केवल लंगोटी लगा ले।
अधिक से अधिक लंगोटी फटे, छोटा-सा टुकड़ा लपेट ले॥
और दण्ड कमण्डल के सिवा, कोई वस्तु पास ना रखे।
आपत्तिकाल को छोड़कर, यह नियम है सदा के लिये॥
कपड़े से छानकर जल पीये, धरती देखकर पैर रखले।
जितने भी कार्य करे, वो सोच विचार कर करे॥
शरीर को निश्चेष्ट स्थिति वाणी के लिए मौन दण्ड है। दोहा
और उद्धव मन के लिए, प्राणायाम ही दण्ड है॥
जिसके पास ये तीनों दण्ड, वह कहना दण्डी स्वामी।
बाँस के दण्ड धारण करने से, नहीं कहना दण्डी स्वामी॥
जातिच्युत गोचाती छोड़कर, चारों वर्णों की भिक्षा ले। दोहा
अनिश्चित सात घरों से, जो मिले सन्तोष करले॥

अब नगर ग्राम में जाये हो, इस प्रकार भिक्षा लेकर।
भिक्षा को पवित्र करले, वहाँ जल से हाथ पैर धोकर॥
फिर शास्त्रोक्त पद्धति से, सुपात्र को भिक्षा आदर देकर।
जो कुछ भी बचे उसे खाये शान्त मौन होकर॥
उक्त व सन्यासी कहलाये और अधिक मांगकर। } दोहा
और उसमें से भी कुछ रखें, दूसरे समय के लिए बचाकर॥

कहीं भी आसक्ति नहीं, इन्द्रियां रहे अपने वश में।
अपने आप में मस्त रहे, तन्मय रहे आत्म प्रेम में॥
प्रतिकूल से प्रतिकूल, परिस्थिति में धैर्य रखे।
सर्वत्र समान रूप स्थित, परमात्मा का अनुभव करे॥
सन्यासी को चाहिए निर्जन एकान्त स्थान में रहना।
हृदय में बनी रहे निरन्तर, मेरी ही विशुद्ध भावना॥
तुम्हारे उद्धव सन्यासी संघ को, करे मुझसे अभिन्न।
अद्वितीय अखण्ड रूप में, निरन्तर ही चिन्तन॥
चित्त के बन्धन और मोक्ष पर, सन्यासी यूं करे विचार। } दोहा
विषय लोलुपता बन्धन है, संयम है मोक्ष आधार॥

अतः सन्यासी को चाहिए कि, मन इन्द्रियों को जीत ले।
भोगों की क्षुद्रता समझ, उनकी ओर से मुँह मोड़ ले॥
और अपने आप में ही, परमानन्द अनुभव करे।
इस प्रकार वह मेरी, भावना भर धरा पर विचरे॥
नगर गांव बस्ती में जाये, केवल भिक्षा के लिए ही।
देह नदी पर्वत वन, ना कहीं जोड़ समता कहीं॥

~~[illegible]~~
वानप्रस्थों के आग्रह से, अधिकतर भिक्षा करे ग्रहण। } दोहा
उनकी भिक्षा कर देती, चित्त को शुद्ध और प्रसन्न॥

सत्य कभी कभी ना समझे सन्यासी ये जग ब्रह्मज्ञान।
क्योंकि ब्रह्म ये जगत नो, प्रत्यक्ष ही है नाशवान॥
इस जगत में कहीं भी, अपना चित्त ना लगाये।
सुख पाने-करने की इच्छा से विरक्त हो जाये।
मन वाणी प्राण संघातरूप, यह जो जगत है आत्मा में।
सारा का सारा माया है, ऐसा विचारे संन्यासी॥ ३०।
इसविचार से साथ करके स्थित हो अपने स्वरूप में।
और फिर कभी उसका, स्मरण ना करे मन में॥

निरन्तर मुमुक्षु मोक्ष अपेक्षा ना रखने वाला सेवक भक्त।
प्यारे ब्रह्म को आश्रमों की, मर्यादा में नहीं है बद्ध॥
वो चाहे तो आश्रमों और, उनके चिन्हों को छोड़कर।
स्वछन्द विचरे वेद-शास्त्र के, विधि निषेधों से परे होकर॥ ३१।
विद्वान होकर भी पागल बने, निपुण हो रहे जड़वत।
वेद विधियों का जानकर भी, सदा पशुवृत्ति से रहे॥
उसे चाहिए कि वो कभी भी, वेद व्यवहार में ना लाये।
वाद-विवाद में पक्ष ना ले, परन्तु तर्क वितर्क ना करे॥
इतना धैर्यवान हो कि, प्राणी से उद्वेग ना हो।
और नाही उद्विग्न करे, स्वयं भी किसी प्राणी को॥
निन्दा हो तो सहे स्तुति से, किसी का अपमान ना करे।
इस शरीर के लिए, किसी से भी वैर ना करे॥
~~जैसे चन्द्रमा विभिन्न जलों में~~
अलग अलग दिखाई देता, जैसे चन्द्रमा कई पात्रों में। ३२
वैसे ही परमात्मा ब्रह्म, स्थित है सभी प्राणियों में॥

सन्त की आत्मा एक है पंचभूत शरीर भी एक ही।
इस अवस्था में वैर-भाव है वैर विरोध अपना ही॥
यदि समय पर ना मिले भोजन सन्यासी दुखी ना होवे।
यदि वस्त्र पूर्ण ना मिलता रहे तो भी हर्षित ना होवे॥ दोहा
मन में विकार ना आये हर्ष और विषाद दोनों के।
क्योंकि भोजन मिलना या ना मिलना अधीन प्रारब्ध के॥
प्यारे उस सन्यासी को अवश्य मांगनी चाहिए भिक्षा।
क्योंकि इसी भिक्षा से होती है प्राणों की रक्षा॥
उसका तत्व विचार होना, तन में प्राण रहने तक ही।
तत्व विचार हो तत्व ज्ञान होकर मिलती है मुक्ति॥
प्रारब्धानुसार जैसी भी सन्यासी को भिक्षा मिल जावे।
उसी से पेट भरे और वस्त्र, जो मिले काम चलावे॥
मैं परमात्मा हूं कर लीला से शास्त्र-नियम करता पालन। दोहा
ऐसे ही ज्ञाननिष्ठ शुचि, आचमन स्नान आदि से आत्मरक्षा॥
क्योंकि ज्ञाननिष्ठ को कभी, भेद प्रतीति ही ना होती।
जो पहले थी रहती वह सदा, साक्षात्कार से नष्ट हो जाती॥

यदि कभी मरणधर्मिणी माया, भेद की प्रतीति होती।
वह भी देहपात हो जाने पर, हो जाता मुक्त में एक ही॥
उसका जो अब तक जो कहा, वाणी ही ज्ञानवान की।
और अब सुनो तुम, वाणी वैराग्यवान की॥
प्यारे उद्धव जब यह निश्चय करले जितेन्द्रिय पुरुष। दोहा
कि संसार के विषयों के, भोग का फल दुःख ही दुःख॥
तब उद्धव वह पुरुष, सबसे विरक्त हो जावे।
यदि मेरी प्राप्ति साधन ना जाने तो सद्गुरु की शरण जावे॥
तभी गुरु से दीक्षा लेवे, श्रद्धा रखे भक्ति करे।
जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं तुम गुरु रूप सेवा करे॥
जिसने मन इन्द्रियों को जीते ना ज्ञान और ना वैराग्य। दोहा
यदि वो तिरछी सन्यासी है तो स्वधर्म करे त्याग॥

देवों को स्वयं को मुझको, जगत को मुझमें देखना।
या सन्यास नहीं मेरी जो, लोक परलोक सब देखना।।

~~सन्यासी का मुख्य अहिंसा~~

उद्धव शान्ति और दया, सन्यासी का मुख्य धर्म है।
नम्रता और भाव भाव, ज्ञानप्रेमी का मुख्य धर्म है।। } दोहा
प्राणियों की रक्षा उद्धव, गृहस्थी का मुख्य धर्म है।
और आचार्यों की सेवा, ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म है।।

गृहस्थी को ऋतुकाल में, केवल स्त्री से सहवास।
ब्रह्मचर्य, नम्र, शौच, सन्तोष, प्रेमभाव धर्म है खास।।
जो वर्णाश्रम धर्म का दास, मेरी सेवा में लगा रहता।
और मेरी भावना कर, अविचल भक्ति को प्राप्त करता।।
मैं सम्पूर्ण लोकों का स्वामी, उत्पत्ति प्रलय का परम कारण।
अनन्य भक्ति से मुझे, प्राप्त कर लेना भक्तजन।। } दोहा
इस प्रकार गृहस्थ सुचि से, मेरा स्वरूप जान लेना।
ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न हो, इसी से मुझे प्राप्त कर लेना।।
उद्धव यदि इस धर्मानुष्ठान में, मेरी भक्ति का पुट लग जाये।
तब तो इससे अनायास ही, मोक्ष की प्राप्ति हो जाये।।

उसने जो प्रश्न पूछा था, उसका मैंने उत्तर दे दिया। } दोहा
धर्मपालक मुझे पूछ सके, ये भी मैंने बतला दिया।।

उन्नीसवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद्भागवत की, उन्नीसवां अध्याय रसमय।
जिसमें भक्ति ज्ञान मय निगम साधनों का वर्णन।।
श्रीकृष्ण से बोले उद्धव, जिसने किया अति सत्कार।
दारुण श्रवण मनन और, निदिध्यासन को बना आधार।। } दोहा

जो औपनिषद पुरुषनिष्ठ है, केवल परोक्ष ज्ञानी नहीं।
और जिसका निश्चय केवल युक्ति अनुमान पर निर्भर नहीं॥

सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच और इसका निवृत्ति साधन मैं जानता।
दोनों मुझमें ही अधिष्ठित मुझमें लीन रहे ऐसा जान॥ दोहा।

प्यारे उद्धव ज्ञानी पुरुष का अभीष्ट पदार्थ मैं ही हूँ।
उसके साधन-साध्य स्वर्ग अपवर्ग भी मैं ही हूँ॥

जो है ज्ञान विज्ञान सम्पन्न प्यारे उद्धव सिद्ध पुरुष।
मेरा आत्मनिक स्वरूप जाने अनन्य भक्ति से ज्ञानी पुरुष॥
वे ज्ञानी पुरुष उद्धव जी अपने ज्ञान द्वारा निरन्तर। दोहा
मुझे धारण करता है, अपने अन्तःकरण के अन्दर॥

जो सिद्धि प्राप्त होती, नव ज्ञान दृश्य होने से।
पूर्णतः नहीं हो सकती, जब तक ज्ञान किसी साधन से॥
अतः उद्धव तुम ज्ञान संग, आत्मस्वरूप को जान लो।
फिर ज्ञान विज्ञान सम्पन्न हो, भक्ति से मेरा भजन करो॥
ज्ञानविज्ञानरूप यज्ञ से, शुद्धि मों ने अन्तःकरण।
परम सिद्धि प्राप्त की, आत्मा का करके भजन॥
आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक ये तीन विकार। दोहा
की समष्टि ही शरीर है, तुम्हारे आश्रित हर बार॥

ये पहले नहीं, अन्त में नहीं, दीख रहा बीच में ही।
इसलिए समझना चाहिए, जाद रेखा समान माया ही॥
जन्मना रहना बढ़ना घटना बदलना और नष्ट होना। दोहा
शरीर के छः भावविकार, तुम्हारा इनसे क्या सम्बन्ध कोई ना॥
ये विकार ना हो शरीर के, असत् वस्तु पहले भी नहीं।
बाद में भी नहीं रहेंगी, बीच में कोई अस्तित्व नहीं॥
उद्धव जी ने कहा- आप ही, विश्व के स्वामी हो भगवन।
आपका यह वैराग्य, और विज्ञानयुक्त ज्ञान सनातन॥

मे ज्ञान जैसे भी सुदृढ़ हो वैसे ही मुझे स्पष्ट करदे।
अभिशोक का वर्णन करें, जिसे गुहलादि भी दूर कर सके।। } दोहा।
जो संसार मार्ग में तीनों ताप के धधकते रूप रहे।
और वे पुरुष अपने, बाहर-भीतर जलते हुए रहे।।
उनके लिए आपके अमृतवर्षी, युगल चरणारविन्दों की।
छत्र छाया के अतिरिक्त, आश्रय नहीं दीखे कोई भी।।
आपका यह अपना सेवक, अँधेरे कुएं में पड़ा।
अज्ञान कालकूपी सर्प ने, इसको है डस रखा।।
फिर भी विषय सुखों की, तृष्णा नहीं मिटती।
जितना भी मिटाना चाहे, ये उतनी ही बढ़ती।।
भगवन आप कृपा करके, इसका उद्धार कीजिए।
ज्ञानी की सुधा-धारा से, इसे सराबोर कर दीजिए।।
भगवान श्री कृष्ण सुनो, उद्धवजी ने प्रश्न किया। } दोहा
यह प्रश्न युधिष्ठिर ने, अन्तिम विदा समय से किया।।
महाभारत में स्वजन संहार, युधिष्ठिर थे शोक मग्न।
उन्होंने तब अन्तिम विदा से, मोक्ष सम्बन्धी किया प्रश्न।।
अन्तिम विदा ने जो सुनाया, वही सुनाना मोक्ष धर्म।
क्योंकि ये ज्ञान वैराग्य, तृष्णा। भक्ति भाव से पूर्ण।।
प्रकृति पुरुष महत्तत्व अहंकार पंचतन्मात्रा भी उद्धव। } दोहा
पाँच पाँच कर्म ज्ञान इन्द्रियाँ मन, पंचमहाभूत गीतु उद्धव।।
इन अट्ठाइस तत्वों को, सम्पूर्ण कार्यों में देखा जाता।
इनमें भी परमात्मतत्व को, अनुगत रूप में देखा जाता।।
ऐसा मेरा मानना है कि, यह एक परोक्ष ज्ञान होता।
अब मैं उसे बताता हूँ कि, क्या अपरोक्ष ज्ञान होता।।

देखना जिस एक तत्व से अनुगत एकात्मक तत्वों को पहले।
उन्हें पहले समान ना देखें, एक प्रथम कारण पहले देखे॥ दो।
इस प्रकार सब इन तत्वों को, इस दृष्टि से देखा जाना।
तब यही निश्चित विज्ञान, अपरोक्षज्ञान कहा जाता॥
इस ज्ञान विज्ञान को पाने की, युक्ति का यही है सार।
त्रिगुणात्मक पदार्थों की, स्थिति उत्पत्ति प्रलय पर विचार॥ दो।

जो तत्ववस्तु सृष्टि प्रारम्भ, अति सूक्ष्म कारण रूप रहती।
प्यारे उद्धव वही वस्तु, मध्य में भी रहती॥
और वही प्रतीयमान कार्यस्थिति में भी अनुगत होती है। दो।
फिर कार्य प्रलय होने पर, अधिष्ठान रूप से रहती है॥

श्रुति प्रत्यक्ष ऐतिह्य अनुमान, प्रमाण कहाती पर लक्षण हो।
सत्य सिद्ध नहीं हो सकते हैं, दृश्य प्रपंच नश्वर होने से॥
प्यारे उद्धव ऐसा होने से, इसीलिए विवेकी पुरुष।
प्रपंच से होता विरक्त, क्योंकि वे है कल्पना रूप॥
स्वर्गादि सुख को भी, प्रत्यक्ष विषय सुख समान।
अमंगल दुःखदायी, और समझे नाशवान॥

उद्धव जी भक्तियोग वर्णन, मैं पहले ही सुना चुका। दो।
क्योंकि तुम्हारी बहुत रुचि है, भक्ति-प्राप्ति साधन बतलाया॥
उद्धव जी जो भी मेरी, भक्ति प्राप्त करना चाहता।
वह मेरी अमृतमयी, कथा से रखे नेहा॥
वह निरन्तर मेरे गुण, लीला का संकीर्तन करे।
पूजा में निष्ठा रखके, स्तोत्रों से स्तुति करे॥
सेवा पूजा में प्रेम रखे साष्टांग प्रणाम करे।
और मेरे भक्तों की पूजा, मेरी पूजा से बढ़कर करे॥

अपने एक एक अंग चेष्टा, केवल मेरे लिए ही करे। } दोहा
और वाणी से मेरे ही, गुणों का गुणगान करे ॥

प्यारे उद्धव जी अपना मन, मुझको ही अर्पित कर दे।
और विषय भोग सुख, सारी कामना को छोड़ दे ॥

मेरे लिए अन्न भोग सुख का भी परित्याग करे।
भक्त, दान, हवन जप व्रत, तप सभी मेरे लिए करे ॥

प्यारे उद्धव जो मनुष्य, करते इन धर्मों का पालन।
और कर देते हैं जो, मेरे प्रति आत्म निवेदन ॥

उनके हृदय में मेरी, भक्ति का उदय होता। } दोहा
और जिसे भक्ति मिले, और पाने को न शेष रहता ॥

चित्त में सद्गुण वृद्धि होती, यूं धर्म पालन करने से।
चित्त भी लग जाता है, दृढ़ होकर आत्मा में ॥

उद्धव यह संसार विविध कल्पनाओं से भरपूर।
इसका नाम नहीं है उद्धव, पर है नहीं कोई वस्तु ॥

उद्धव जब संसार में, अपना चित्त लगा दिया जाता। } दोहा
तब इन्द्रियों के साथ जो, इधर उधर भटकने लगता ॥

चित्त असत् वस्तु में लगता, रजोगुण बढ़ जाते हैं।
अधर्म अज्ञान का घर होता, धर्म ज्ञान लुप्त हो जाते हैं ॥

जिससे हो मेरी भक्ति, वही धर्म है उद्धव जी।
अहम आत्मा का एकाकार, वही ज्ञान है उद्धव जी ॥

विषयों से अलग रहना, वैराग्य उद्धव जी। } दोहा
और अष्ट सिद्धियाँ, मिलना ऐश्वर्य उद्धव जी ॥

उद्धव जी ने यज्ञ-भावना, यम और नियम कहा है।
दान और दम कहा है, तितिक्षा और धैर्य कहा है।

आप मुझे दानु तप शूरता, सत्य व अमृत का रूप बताइये।
त्याग, धन, मल, दक्षिणा, क्या हैं? मुझे भी बताइये॥

सम्पत्ति बल अन्न, लाभ क्या, विद्या लज्जा भी क्या है।
सुख दुःख क्या है और, पराक्रम शूरों के लक्षण क्या हैं॥ } दोहा।
पुरुषार्थ पुरुषार्थी स्वर्ग नरक, भाई बन्धु और घर क्या है।
पूरण ईश्वर किसे कहें, भगवान निधनि क्या है॥

हे भक्तवत्सल प्रभो आप, इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए।
साथ ही इनके विरोधी, भावों की भी व्याख्या कीजिए॥

मन वाणी शरीर द्वारा जो, कुल मिलाकर बारह यम हैं। } दोहा।
अहिंसा सत्य अस्तेय, अर्थात चोरी नहीं करना है॥
ब्रह्मचर्य अपरिग्रह पाँच बाह्यजन्य अभ्यन्तर ज्ञान को जोड़ना।
आस्तिकता ब्रह्मचर्य मौन, स्थिरता क्षमा अभय रहना॥
यम की तरह नियम भी बारह, शौच अन्दर बाहर पावनता।
जप तप हवन अहिंसा, अतिथि सेवा मेरी पूजा॥
तीर्थ भावना प्रदोषकाल-चेष्टा, सन्तोष बारहवां गुरु सेवा है। } दोहा।
दसों प्रकार शुद्धि यम नियम, दोनों की संख्या बारह है॥

सकाम, निष्काम को उपयोगी, जो इनका पालन करते।
यम-नियम इच्छानुसार, भोग मोक्ष प्रदान करते॥
उनकी पुष्टि का मुख्य में, लगा जाला ही है श्वास।
और इन्द्रियों का संयम, ही कहलाता है दम॥

[redacted]
न्याय से प्राप्त दुःख को, सहन करना नाम तितिक्षा।
धैर्य का अर्थ नियमितता, जानेन्द्रिय व जिह्वा॥
किसी से द्रोह ना करना, सबको अभय देना है दान।
कामना त्याग ही तप है, शरीर मांसना पे लगाम॥
सर्वत्र समस्वरूप सात्मक, परमात्मा दर्शन है सत्य। } दोहा।
सत्य मधुर भाषण को, महात्माओं ने कहा है वचन॥

कर्मों में आलस्य का होना, उहुव की दरिद्रता कहलाती।
कामना अंधों का दर्शन ही, सच्चा दृष्टिहीन कहलाता।।

धर्म ही मनुष्यों का उहुव, अभीष्ट धन कहलाता।
मन में है और ज्ञान का, उपदेश ही दक्षिणा कहलाता।।
प्राणायाम ही श्रेष्ठ 'बल' मुझ में ऐश्वर्य मेरा ही।
उनौर उहुव उत्तम लाभ है, मेरी श्रेष्ठ भक्ति ही।।
सच्ची विद्या वही जिससे ब्रह्म आत्मा भेद मिट जाता। }दोहा।
पाप होने से पूर्व का, होना, ही उहुव लज्जा कहलाता।।

निरपेक्षता आदि गुण ही, शरीर का सौन्दर्य भी है।
दुःख सुख भाव नष्ट होना, ही उहुव सुख है।।
प्यारे उहुव विषय भोगों की, कामना ही दुःख कहलाता है। }दो।
जो बन्धन मोक्ष तत्व जाने, वही सच्चा पण्डित कहलाता है।।

मैं-पन शरीर आदि में, वही मूर्ख कहलाता है।
जो राह तुझे प्राप्त कराये, वही सुमार्ग कहलाता है।।
चित्त वृत्ति मुरलता कुमार्ग, सत्वगुण वृद्धि स्वर्ग है उहुव।
नरक है तमोगुण वृद्धि, सच्चा भाई बन्धु गुरु है उहुव।।
यह मनुष्य शरीर ही, सच्चा 'घर' है उहुव।
जो गुरु से समान, सच्चा धनी नहीं है उहुव।।
जिसके चित्त में सन्तोष नहीं, सबसे बड़ा दरिद्र वही।
और उहुव जो नहीं जितेन्द्रिय, सबसे बड़ा कृपण वही।।
सामर्थ्य सच्चा ईश्वर है वो, जो नहीं विषयों में आसक्त। }दोहा।
इसके विपरीत असमर्थ वही, जो है विषयों में आसक्त।।
जो प्रश्न तुमने पूछे थे, सबका उत्तर दे दिया उहुव।
इनको ही समझ लेना, मोक्ष मार्ग के लिए सहायक।।

गुण दोषों का सदा, अलग अलग कहें न कवि ।
परन्तु हाँ प्यारे उद्धव, मैं लोभ का दुर्गुण समझाऊँ ॥
गुण दोषों पर दृष्टि जाना, उद्धव बड़ा दोष है सबसे ।
रहे ज्ञान स्वरूप में स्थित, उद्धव बड़ा गुण है सबसे ॥

तीसवाँ अध्याय

अब सुनो श्रीमद् भागवत का, तीसवाँ अध्याय ।
जिसमें ज्ञानयोग कर्मयोग, और भक्तियोग बताया ॥

उद्धवजी बोले- कमलनयन आपकी आज्ञा ही वेद है ।
उसमें शुद्ध कर्म विधि है, कुछ के करने का निषेध है ॥
यह विधि निषेध कर्मों की, गुण दोष परीक्षा से होना ।
द्रव्य देश, आयु काल आदि, का बोध भी वेदों से होना ॥
आपकी वाणी ही वेद है, पर उनमें है विधि निषेध ।
जो जैसे कल्याण करे, जिसे नहीं पता गुण-दोष भेद ॥
आपकी वाणी द्वारा ही, अदृष्ट वस्तु भेद होना ।
कौन सा साध्य, क्या साधन, इसका निर्णय उसी से होना ॥
गुण दोषों में भेद दृष्टि, आपकी वेद वाणी अनुसार ।
नहीं किसी की कल्पना, ना ही है जो निराधार ॥
किन्तु प्रश्न ये है भगवन, वाणी भेद निषेध भी करती ।
मुझे हो रहा भ्रम ही भ्रम, वाणी जाये सच्ची सच्ची ॥

श्री कृष्ण बोले- उद्धवजी, मनुष्यों का करने कल्याण ।
वेदों और अन्यत्र मैंने, दिया तीन योग का ज्ञान ॥
ज्ञान कर्म और भक्ति, तीनों के दिये नाम बताय ।
कल्याण हेतु इसके अलावा, और नहीं कोई उपाय ॥

जो कर्म फलों से विरक्त, के ज्ञान योग के अधिकारी।
जिन्हें नहीं कुछ वैराग्य, के कर्म योग के अधिकारी।।
जो ना विरक्त ना आसक्त, वह लीला कथा में हुई प्रवृत्त।
वे अधिक योग अधिकारी, इसी योग से मोक्ष मिल सकता।।
सभी तक कर्म करो उद्धव, सुखों से वैराग्य ना हो जब तक।
या मेरी लीला कथा श्रवण, में श्रद्धा ना हो जाये जब तक।।
वर्ण आश्रम के अनुकूल, धर्म में स्थित रहकर।
यज्ञों से करे आराधना, आशा कामना ना धरकर।।
विहित कर्मों का करे आचरण, निषिद्ध कर्मों से दूर रहकर।
तो उसे स्वर्ग या नरक, कहीं नहीं जाना पड़े उद्धव।।
इस शरीर में रहते रहते, धर्म में निष्ठावान पुरुष।
निषिद्ध कर्म परित्याग कर, हो जाता मलों से मुक्त।।
इसी से अनायास ही उसे, आत्मसाक्षात्कार रूप उद्धवजी। } दोहा
विशुद्ध तत्वज्ञान होने पर, मेरी भक्ति प्राप्त होती।।
यह विधि निषेध कर्माधिकारी, दुर्लभ मनुष्य शरीर धारी।
स्वर्ग नरक वासी दोनों, करते हैं अभिलाषा इसकी।।
क्योंकि शरीर की शुद्धि हो, ज्ञान भक्ति-प्राप्त हो सकती। } दोहा
स्वर्ग-नरक भोग प्रधान, शरीर साधना को उपयुक्त नहीं।।
मानो ना करे अभिलाषा, न स्वर्ग और ना नरक की।
और तो और ना करे, कामना इस शरीर की।।
क्योंकि अभिमान हो जाने से, उद्धव किसी भी शरीर में।
प्रमाद होने लगता है, अपने स्वरूप प्राप्ति साधन में।।
उद्धव यद्यपि यह शरीर, है तो मृत्यु ग्रस्त ही।
पर इससे परमार्थ की, सत्यवस्तु प्राप्त हो सकती।।

अतः मृत्यु से डरें ही ऐसी करे साधना और उपाय।
कि जन्म मृत्यु चक्कर से सदा के लिए मुक्त हो जाय।

यह शरीर वृक्ष है जिसमें घोंसला बना जीव करे निवास।
उड़ गया इसे अतिथि, काल रहे इन समराज॥
जैसे पक्षी कटते शाखं को छोड़कर उड़ जाता है।
अनासक्त शरीर छोड़े, मोक्ष का भागी बन जाता है॥

काल क्षण जीवन क्षीण होरहा, जो यह भेद जान जाता।
जन्म मृत्यु से निरपेक्ष हो, आत्मा में ही स्नान हो जाता॥

प्राप्ति का मूल है शरीर, उद्भव समस्त शुभ फलों की। ६८।
अनायास सुलभ हो गया अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी॥
यह शरीर सुदृढ़ नौका है, संसार सागर करने पार॥
गुरुदेव इसके केवल बन, संचालन करने पतवार॥

मैं अनुकूल वायु रूप इसे, लक्ष्य की ओर बढ़ाता।
लो अपने पैर मारे कुल्हाड़ी, तब भी जो पार न हो पाता॥

जब पुरुष दोष दर्शन कारण, कर्मों से विरक्त हो जाये।
तब जितेन्द्रिय होकर वह, मोक्ष में स्थित हो जाये॥

जब स्थिर करले समस्त मन, लगे भटकने इधर उधर। ६९
सावधानी से मनाये, करले, वश में चंचल कुशलाकर॥
इन्द्रिय प्राण वश में रख, खुला न छोड़े मन को।
एक एक चाल गौर से देखे, बुद्धि से वश करे मन को॥

ज्यों घोड़े को वश करने में, सवार सदा भाव जनाता।
अर्थात अपनी इच्छानुसार, घोड़े को चलाना चाहता॥ ७०।

Pt
8 9

और छोड़ी हठ मन में करि लेना, उसे मारकर कुसलाकर।
मन वश करना परम योग है, उसे जीती नीति सुझाकर॥
प्रकृति से ले शरीर पर्यन्ता, सारे शास्त्र में जो सृष्टि क्रमा।
उद्धव जी मनु क्रम करे, उसी अनुसार सृष्टि चिन्तना॥

जिस क्रम शरीर प्रकृति लिप्त है, उसी प्रकार करे क्रम चिन्तन।
क्रम जब तक रहे जारी, जब तक स्थिर ना हो मन॥
जो विरक्त जिसे संसार के, है पदार्थों में दुःख बुद्धि। (दो)
अपने स्वरूप चिन्तन में रहे, समझ गुरु उपदेश भली भाँति॥

इस अभ्यास से जल्दी ही, उसका मन अपनी चंचलता।
जो आत्म बुद्धि करने से हुई, मन उसको छोड़ देता॥
यम नियम आसन प्रत्याहार, प्राणायाम ध्यान धारणा।
योग मार्ग आत्म विद्या से, और करे प्रतिमा उपासना॥

अथवा कर्म योग ज्ञान योग और भक्ति योग से मुझे चाहे।
मेरी आराधना का उद्धव, और कोई नहीं उपाय॥
ऐसे तो योगी कभी कोई, निन्दित कर्म कभी करता नहीं।
यदि कोई अपराध हो जाए, प्रमादवश यदि उससे कभी॥
तो योग द्वारा ही उस, पाप को जला डाले उद्धव।
कृच्छ्र - चान्द्रायण आदि, प्रायश्चित ना करे उद्धव॥
यही गुण कहा गया है उद्धव, अधिकार में जो है स्थिता। (दोहा)
गुण दोष विधि निषेध विधान से, रस यही तात्पर्य निकला॥

कि किसी प्रकार विषयासक्ति का, परित्याग हो जाए उद्धव।
कर्म तो अनर्थ मूल है, शास्त्र तात्पर्य निर्णय उद्धव॥

जो साधक समस्त कर्मों से उऋण हो गया हो निष्कर्म।
मेरी लीला कथा के प्रति, श्रद्धालु और हो अति संलग्न॥
यह जानता कि दुःख रूप है, सभी भोग-भोगने की चाह।
किन्तु इतना जानते हुए भी, परित्याग ना कर पावे॥
शुभ से चाहित भोगों को भोगे, किन्तु उन्हें दुःखजनक समझे।
मन ही मन करे निन्दा, और उसे दुर्भाग्य ही समझे॥
साथ ही इस दुविधा की, स्थिति के तोड़ने बन्धन।
श्रद्धा दृढ़ निश्चय और, प्रेम से सेवा करे अर्जन॥
इस प्रकार मेरे वत्सलावे, भक्ति योग के द्वारा निरन्तर।
भजन करने से मैं उसके, बैठ जाता हृदय के अन्दर॥
मेरे विराजमान होते ही, उसकी वासनाएं उड़ुल।
अपने संस्कारों के साथ, नष्ट हो जाती हैं उड़ुल॥
जब मेरा साक्षात्कार होता, संशय हो जाते छिन्न भिन्न।
हृदय की गांठ टूट जाती, कर्म वासना होती क्षीण॥
मेरी भक्ति से पुलक और, चिन्तन मग्न रहे जो योगी।
उसके लिए ज्ञान वैराग्य की, कभी आवश्यकता ना होती॥
स्वर्गादि जो भी मिलता है, तप दान ज्ञान योगाभ्यास से।
मेरा भक्त अनायास पाता, मेरे भक्ति योग प्रभाव से॥
मेरे अनन्य प्रेमी भक्त धर्मवान एवं नहीं कुछ चाहते ही नहीं। } दोहा
मोक्षादि कुछ देना चाहूँ, तो उसको भी लेते ही नहीं॥
सबसे श्रेष्ठ परम कल्याण, निरपेक्षता का दूसरा नाम।
उसी मेरी भक्ति मिलती, जो निरपेक्ष और निष्काम॥
जो भक्त समदर्शी बुद्धि से, प्राप्त कर चुके परमतत्व।
उनकी दृष्टि में पाप-पुण्य का नहीं कोई अस्तित्व॥

1322

classmate
Date
Page

इक्कीसवां अध्याय

आप सुनो श्रीमद भागवत का ग्यारहवां स्कन्ध इक्कीसवां अध्याय।
जिसमें श्री कृष्ण ने गुण दोष व्यवस्था का स्वरूप बताया॥

श्री कृष्ण कहें- उद्धव, मेरी प्राप्ति मार्ग हैं तीन योग।
पहला भक्ति दूसरा ज्ञान, और तीसरा है कर्म योग॥ ८।६।
जो इन्हें छोड़ इन्द्रियों के, क्षुद्र भोग भोगते रहते।
वे बार-बार जन्म मृत्यु रूप, संसार चक्र भटकते रहते॥

अधिकाकार अनुसार धर्म निष्ठा, रखना ही गुण है उद्धव।
और इसके विपरीत दोष है, अनाधिकार चेष्टा उद्धव॥
गुण दोष दोनों की व्यवस्था की जाती अधिकार अनुसार। ८।६।
क्योंकि उद्धव नहीं होती है, किसी भी वस्तु के अनुसार॥

और
शुद्ध-अशुद्धि गुण दोष और, शुभ-अशुभ का जो विधान।
किया जाता है उद्धव जी, चाहे वस्तुएं हो समान॥
अर्थात पदार्थों का ठीक-ठीक, निरीक्षण परीक्षण हो सके।
और उनमें सन्देह उत्पन्न कर, उन्हें संकलित किया जा सके॥
और उन पदार्थों के द्वारा, धर्म सम्पादन कर सके हम।
साथ ही समाज का व्यवहार, ठीक-ठीक चला सके हम॥

और सुविधा हो अपने व्यक्तिगत जीवन के निर्वाह में भी।
क्योंकि उद्धव इसके अतिरिक्त, होता है एक और लाभ भी॥
कि मनुष्य अपनी वासना मूलक, सहज प्रवृत्तियों के द्वारा। ८।६।
उनके जाल में ना फँसकर, मन वशीभूत करे शास्त्र द्वारा॥

निष्पाप उद्धव मैंने ही, मनु आदि रूप धारण किया।
धर्म आर देने वालों को, यह आचार उपदेशित किया॥
पृथ्वी जल तेज वायु गगन, सभी प्राणियों के मूल कारण।
ईश्वर दृष्टि से समान सबका आत्मा एक ही भगवन॥
यद्यपि सबके पंचभूत समान, फिर भी भेदों में इनके।
वर्णाश्रम आदि भिन्न भिन्न, नाम रूप बनाये इनके॥ दोहा
ताकि ये वासना मूलक, प्रवृत्तियों को संकुचित करके।
धर्म अर्थ काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थ सिद्ध करके॥
देश काल फल निमित्त आदि वस्तुओं के गुण दोषों का।
विधान किया मेरे द्वारा, ताकि भंग न हो मर्यादा॥
देशों में वह देश अपवित्र जिसमें दुष्ट सार मृग न हो। दोहा
और उद्धव स्थान वो जहाँ, निवासी ब्राह्मण भक्त न हो॥
दुष्ट सार मृग होने पर भी जहाँ संत हो, उसे छोड़कर।
सार स्थान अपवित्र हो जहाँ, संस्कार रहित और ऊसर॥
कर्म योग्य सामग्री कर्म हो, वही पवित्र समय है उद्धव।
जिस समय में कर्म सामग्री नहीं, ना हो कर्म वही अशुद्ध उद्धव॥
प्यारे उद्धव किसी पदार्थ में उपस्थित शुद्धि और अशुद्धि। दोहा
द्रव्य वचन संस्कार काल, महत्व या अल्पत्व से होती॥
जैसे कोई पात्र जल से शुद्ध, मूत्रादि से अशुद्ध हो जाता।
यदि वो शुद्धि अशुद्धि शंका, ब्राह्मण वचनों से शुद्ध हो जाता॥
पुष्पादि जल छिड़कने से शुद्ध, सूंघने से अशुद्ध हो जाता।
नदी का जल शुद्ध, बासी अशुद्ध माना जाता॥
बड़े सरोवर और नदी का, जल शुद्ध माना जाता है।
और उद्धव छोटे गड्ढे का, जल अशुद्ध माना जाता है॥

शारीरिक अशारीरिक शुद्धि और कर्मभेद के अनुसार उद्धव।
पवित्रता और अपवित्रता की व्यवस्था होती है उद्धव॥
उसमें भी स्थान और, उपयोग कर्ता का भी विचार।
ठीक तरह से आंकना जाना, दोष अशुद्ध वस्तुओं के प्रकार॥
ज्यों धनी-दरिद्र बलवान-निर्बल बुद्धिमान-मूर्ख नरक हरि उद्धव।
उत्तम मूर्ख और सुरनर देश, भेद से अन्तर पड़ता उद्धव॥ ६१
अनाज लकड़ी हाथी दाँत आदि, सूत नमक घी तेल आदि।
सोना-पारा आदि तेजस पदार्थ, मिट्टी से बने घड़ा आदि॥
ये सभी पदार्थ समय आने पर हवा लगने पर तपने से।
ये शुद्ध हो जाते उद्धव जी, मिट्टी का जल से धोने से॥
देश, काल, अवस्थानुसार, जल मिट्टी भी शोधन करनी पड़ती।
तो कहीं कहीं उद्धव जी, रख-रखाव से भी शुद्ध हो जाती॥ ६२
यदि किसी वस्तु के लगने से, कोई भी पदार्थ अशुद्ध।
धोने से मिट्टी से छूटे, तो वस्तु को समझो शुद्ध॥
चित्त शुद्ध होता स्नान, दान, तप, कर्म मेरा स्मरण।
तब विहित कर्म आचरण करे, ये श्रेष्ठ, शास्त्रीय और प्रशस्त॥
गुरु के पावन मुख से सुन, हृदयंगम करने से मन्त्र की।
और मुझे समर्पित करने से, कर्म की शुद्धि होती॥
उद्धव जी देश काल पदार्थ, कर्ता मन्त्र और कर्म।
इनके शुद्ध होने पर कर्म, अशुद्ध होने से होता अकर्म॥ ६३
कहीं-कहीं शास्त्रविधि से, गुण हो जाता है दोष।
और कहीं कहीं पर गुण, कहलाता है स्वयं दोष॥

• जैसे संध्या वन्दन जपादि ब्राह्मण के लिए गुण कहे जाते
किन्तु वही उद्धव ये सब शूद्र के लिए दोष कहलाते।
दूध आदि का आधार निहित है सभी मनुष्यों के लिए
किन्तु उद्धव से निषिद्ध है, सभी ब्राह्मणों के लिए॥
अर्थात एक वस्तु एक को गुण और वही दूसरे का दोष समझो जैसे
ये गुण दोष वास्तविकता रखते गुण दोष भेद कल्पित जानो॥

पतित करे पतित आचरण तो उन्हें पाप नहीं लगता।
जबकि श्रेष्ठ पुरुषों के लिए यह संभव होता॥

जैसे गृहस्थी का पतित होना, नहीं माना जाता पाप।
किन्तु किसी सन्यासी के लिए, यही हो जाता कारण पाप॥ दो

उद्धव जो नीच को लोक है, वह अपने और निकालकर लें।
वैसे ही जो परलोक में पतित है, अपने और पतन लाता है॥
जिन जिन वस्तुओं से चिपके, उलझ ही जाता है।
उन्हीं वस्तुओं से बन्धन में, मनुष्य फंस ही जाता है॥
मनुष्यों के लिए यही धर्म है ऐसा कल्याण करेगा।
क्योंकि यही लोक मोह और भय को मिटाये॥
विषयों में गुण आरोपित हो, वस्तु में आसक्ति हो जाती।
आसक्ति होने से उसे, पास रखने की कामना हो जाती॥ दो
और इस कामना की पूर्ति में, जब कोई बाधा पैदा होती।
तब फिर उद्धव आपस में, लोगों में कलह होने लगती॥
और फिर कलह से क्रोध, असहय क्रोध पनपता।
क्रोध के वशीभूत अपने हित, अहित का बोध न रहता॥

और इससे अज्ञान होता, इस अज्ञान से मिश्र ही।
निर्णय करने वाली समझ, चेतना शक्ति लुप्त हो जाती॥ } छंद।

चेतना शक्ति लुप्त होते ही मनुष्य जा की ना रहती।
श्रम समान हो जाता, और प्रशुता आ जाती॥
जैसे कोई मूर्छित हो, आ जाती ऐसी अवस्था।
इस स्थिति में न स्वार्थ और ना ही परमार्थ बनता॥
विषयों का चिन्तन करते करते, वह विषय रूप हो जाता।
और उसका जीवन वृक्षों, के समान जड़ हो जाता॥
उसके शरीर में उसी प्रकार, मर्म सांस चलता रहता। } दोहा।
जैसे लुहार की धौंकनी, उसे सुध भी ध्यान न रहता॥

स्वर्गादि रूप फल बतलाने, करने वाली श्रुति उडुप जी।
मनुष्य के लिए उन लोकों को, परम पुरुषार्थ नहीं बतलाती॥
परन्तु नाहि मुक्ति के लिए अन्तःकरण शुद्धि से मोक्ष की।
निश्चय से कर्म कराने श्रुति ऐसा बतलाती॥

जो ओषधि रूचि पैदा करते रोचक वाक्य कहें बच्चों से। } दो।
कि चोटी बढ़ जाये तुम्हारी गिलोय का काढ़ा पी लो प्रेम से॥ } दो।
निःसन्देह विषय भोगों में जन्म आसक्त हैं प्राणीजन।
आसक्ति आत्म उन्नतिबाधक, और है अनर्थ का कारण॥
वे स्वर्गादि के लालच में देवादि योनियों में भटकते।
फिर वृक्षादि योनियों में, घोर अन्धकार में भटकते॥

अब तुम ही बताओ उडुप, कोई नर इस अवस्था में।
भला कौन प्रवृत्त करेगा, उन्हीं गृहस्थी विषयों में॥
दुर्बुद्धि लोग वेदों का यह, अभिप्राय ना समझ कर। } दोहा।
स्वर्गादि लोकों को चाहते, उन्हें परम फल मानकर॥ }

विषय वासना में फँसे लोभी, स्वर्गादि को सब कुछ समझे।
उद्धव जी ये मुग्ध हो जाते, यज्ञ-यागादि कर्मों को॥
देवलोक पितृलोक की ही, प्राप्ति होती है उनको।
भटक जाने के कारण, आत्मपद पना न लगता उनको॥

प्यारे उद्धव उनके पास, साधना है तो मात्र कर्म की।
और उसका कोई फल है तो, केवल इन्द्रियों की तृप्ति॥ दोहा

वे नहीं जान पाते कि, जिससे जगत की हुई उत्पत्ति।
स्वयं जगत परमात्मा वेणु हूँ मैं उनके हृदय में ही॥
यदि हिंसा और उसके फल, हो मांस भक्षण में राग।
तो यज्ञ ही करे जब तक, ना हो फल का त्याग॥

यह स्वाभाविक प्रवृत्ति संकोच और है परिसंस्कार विधि।
सन्ध्या वन्दनादि के समान, ये नहीं है अपूर्व विधि॥
मेरा परोक्ष अभिप्राय न समझ, हिंसा का खिलवाड़ खेलते।
वांछित पशु मांस से यज्ञ कर, देव पितर यजन का ढोंग करते॥ दोहा

स्वर्गादि स्वप्न दृश्य समान, शास्त्रों में असत् हैं उद्धवजी।
उनकी बातें सुनने में, लगती हैं बहुत ही मीठी॥
यों • मायारी लाभ के लालच, मूल धन भी खो बैठते।
वे से ही मूढ़ों के द्वारा, अपने धन का नाश करते॥
वे स्वयं रजोगुण सतोगुण या, तमोगुण में स्थित रहते।
मेरी पूजा की जगह वो, सतरजतम गुणी देव पूजते॥
प्यारे उद्धव फिर वे पूछा, जब ऐसी पुष्पिता वाणी।
मीठी मीठी बातें सुनते, रंग बिरंगी मन लुभावनी॥ दोहा

कि हम लोग भजन करके स्त्री ही स्वर्ग में जायेंगे।
फिर वही हमारा जन्म होगा, कुलीन परिवार में पैदा होंगे॥

बड़े बड़े महल होंगे और, ज्ञान से सम्पन्न घरबार।
बहुत बड़ा और सुखी होगा, हमारा फैलता फूलता परिवार॥

ये बातें सुनते सुनते तब, कोई आन उन्हें न लगायेगी।
उन चमंडियों को मेरे प्यारे, आनचीन में अच्छी न लगती॥

कर्म उपासना और ज्ञान, वेदों में तीन काण्ड हुए जी।
इनको प्रतिपादित विषय है, ब्रह्म और एकता आत्मा की॥

गुप्त भाव से बतलाते हैं, सभी मंत्र और मंत्रदृष्टा = ऋषि। } दोहा।
और तुझे भी इस ज्ञान को, अभीष्ट है गुप्त रूप कहना ही॥ }

वेदों का नाम शब्द ब्रह्म है, वे तेरी मेरी मूर्ति हैं।
उद्धव जी इसी से उनका, रहस्य जानना कठिन है॥

उद्धव जी यह शब्द ब्रह्म ही, परा पश्यन्ती और मध्यमा।
वाणी के रूप में ये, प्राण मन इन्द्रियों में बसा॥

सीमा रहित और गहरा, शब्द ब्रह्म समुद्र समान।
जैमिनि भी तात्पर्य न समझे, वह लगाना नहीं आसान॥

प्यारे उद्धव मैं शक्तिमान और हूँ स्वयं अनन्त ब्रह्म ही।
तब वेद वाणी का भी, विस्तार किया है मैंने ही।
जैसे होता पतला-सा सूत, उद्धव जी कमल की नाल में। } दोहा।
त्यों अनाहत नाद प्रकट हो, वेद वाणी अन्तःकरण में॥ }

सुनो उद्धव जी प्रभु हिरण्यगर्भ, अमृतमय स्वयं वेदमूर्ति।
उनकी उपाधि है प्राण, अनाहत शब्द से अभिव्यक्ति॥

प्यारे उद्धव जैसे मकड़ी, अपने हृदय से मुख द्वारा।
उगलती है रेशे जाले के, और फिर निगलती है द्वारा॥

वे स्पर्श आदि वर्ण संकल्पकर्ता मनरूप निमित्त कारण वैसे ही। } दोहा
वे स्वरी रूप वेद वाणी को, प्रकट करते हैं स्वयं ही॥ }

और फिर उस वेदवाणी को अपने में लीन कर लेते।
उस अन्न में उन्हें बताना, वर्ण बारे सारी कथा कहते॥

वह वाणी हृदयान सूक्ष्म, ओंकार द्वारा अभिव्यक्त। } दोहा
स्पर्श, स्वर, ऊष्मा, अन्तःस्थ, चार वर्णों से है विभूषित॥ }

स्पर्श वर्ण में 'क' से लेकर 'म' तक आते पच्चीस अक्षर।
स्वर वर्ण में 'अ' से लेकर 'औ' तक आते नौ अक्षर॥
प्यारे ऊष्म वर्ण में, हैं 'श' 'ष' 'स' 'ह' अक्षर।
और अन्तःस्थ वर्ण में, हैं 'य' 'र' 'ल' 'व' अक्षर॥
वाणी में ऐसे छन्द हैं जिनमें चार-चार वर्ण बढ़े उत्तरोत्तर। } दोहा
उनके द्वारा विचित्र भाषा, के रूप विस्तृत हुई उद्धव॥ }
गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती जगती अतिछन्द।
पंक्ति, त्रिष्टुप अत्यष्टि, अतिजगती विराट आदि छन्द॥
अब मैं बताता वेदवाणी कथा कर्मकाण्डों में विधान करती।
उपासना काण्ड में किन देवताओं का वर्णन करती॥
और बताता ज्ञानकाण्ड में, किन-प्रतीतियों का अनुवाद करके।
और उद्धव जी उनमें कैसे, अनेक प्रकार विकल्प करके॥

इन वाणी को इस सम्बन्ध में, श्रुति रहस्य मेरे अतिरिक्त। } दोहा
और कोई नहीं जानता, अब तुम्हें स्पष्ट करता हूँ मित्र॥ }

सभी श्रुतियां कर्मकाण्ड में, मेरा ही विधान करती है।
उपासना काण्ड में देव रूप, से मेरा ही वर्णन करती है॥
और ज्ञानकाण्ड में आकाशादि, रूप से मुझ में ही।
अन्य पदार्थों का आरोप कर, उनका निषेध कर देती॥
उद्धव जी सम्पूर्ण श्रुतियों का, तात्पर्य है बस इतना ही।
कि वे मेरा आश्रय लेकर, मुझ में भेद आरोप करती॥
उद्धव जी मायामात्र कहकर, उसका अनुवाद करती है। } श्लोक
और उसका निषेध कर, मुझ में ही शान्त हो जाती है॥ }

बाईसवां अध्याय

अब सुनो परम भक्त आयुवान का, ग्यारहवां एकत्व बाईसवां अध्याय।
श्री शुकदेव नत को बोलना, पुरुष पुकारे विवेक आसान॥

उद्धव जी ने कहा-विस्तार से=मुनि नत संख्या कितनी बतलाये। } दो
आपने 24 अभी सुने, कुल अट्ठाइस नत न गिनाये॥ } दो

किन्हीं कुछ लोग छब्बीस नत, और कुछ तो पच्चीस बतलाते।
कोई सात, कोई नौ अथवा, कोई छः तो कोई चार बतलाते॥

भगवन कोई कहता ग्यारह, किसी ने संख्या सत्रह बतलायी।
और किसी ने कहा सोलह, तो किसी ने तेरह बतलायी॥

सनातन श्री कृष्ण इतनी भिन्न, नत संख्या का कथन अभिप्राय।
मुनि मुनियों में मत भेद है, कृपया इस को बतलायें॥

उन्हीं कृष्ण बोले-उद्धव जी, वेदज्ञ ब्राह्मण इस विषय में; } दो
जो कहे ठीक है क्योंकि सभी नत अन्न मूर्ति सब में॥ } दो

जैसा कहो वो ठीक नहीं, जो मैं कहता वही यथार्थ।
ऐसे जगत कारण सम्बन्धों से होता है इसलिए, विवाद॥

कि मेरे शक्तियां अनन्त, रहस्य लोग समझ न पाते।
अतः वे अपनी अपनी, मनोवृत्ति पर आग्रह कर बैठते॥

सत्त्व आदि गुण क्षोभ से, कल्पनारूप प्रपंच उद्भव होता। } दो
जो वस्तु नहीं केवल नाम, यही विवाद का विषय होता॥ } दो

जब इन्द्रियां होती वश में, और चित्त शान्त हो जाता।
तभी उद्धव नत यह प्रपंच भी, निवृत्त हो जाता॥

तो इस तरह तभी उद्धव प्रपंच निवृत्ति के साथ।
अपने आप मिट जाते हैं, ये सारे के सारे विवाद॥

उद्धव जी कथा कारण कार्य में, या कार्य कारण में मिलाना। } दो
नतों का अनुप्रवेश परस्पर, इंगित संख्या सिद्ध कराना॥ } दो

प्राय: एक दीनत्व में हो गया, दूसरे तत्वों का अन्तर्भाव।
इसका कोई नहीं है बन्धन, किसका किसमें अन्तर्भाव।

सभी अन्तर्भाव हो घट-पट आदिका, उनके कारण मिट्टी रूप में।
सो सभी मिट्टी रूप का होता, उनके कार्य घट-पट आदि में।। } दोहा

कार्य को जिस कारण में, सो कारण को जिस कार्य में।
अन्तर्भूत करके उद्धव, वादी-प्रतिवादियों ने।।
जितनी संख्या की स्वीकार, उसे स्वीकार करते निरन्तर ही।
क्योंकि उद्धव जी उनका यह, उपादान है मुक्ति संगत ही।।
जिन लोगों ने तत्वों की, कुल संख्या छब्बीस बताई।
वे कहें जीव अनादि काल से, अविद्या से ग्रस्त है भाई।।
वे आगे कहते हैं कि जीव, अपने आप को नहीं जान सकता।
उसे आत्मज्ञान कराने हेतु, अन्य सर्वज्ञ की है आवश्यकता।। } दोहा

इसलिए पधारे उद्धव प्रकृति के, कार्यकारण रूप चौबीस तत्व।
पच्चीसवां पुरुष छब्बीसवां ईश्वर, स्वीकार करे छब्बीस तत्व।।
पच्चीस मानने वाले वे कहते, जीव ईश्वर में भेद व्यर्थ है।
वही ज्ञान की बात सोची, सत्त्वात्मिका प्रकृति गुण है।।
तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती उद्धव।
ज्ञान रज आदि गुण प्रकृति के, आत्मा के नहीं उद्धव।।
इन्हीं द्वारा जगत की स्थिति उत्पत्ति और प्रलय हुआ करता।
अत: ज्ञान आत्मा का नहीं, इसे प्रकृति का गुण कहते।।

उद्धव जी इसी प्रसंग में सत्त्वगुण ही ज्ञान कहलाता। } दोहा
कर्म है रजोगुण ही, तमोगुण अज्ञान कहलाता।।
ईश्वर काल स्वरूप इन गुणों से सृष्टि उत्पन्न करता।
अत: मुक्ति संगत तत्वों की, पच्चीस और छब्बीस संख्या।।
उद्धव जी यदि तीनों गुणों को प्रकृति से अलग मान लिया जाये।
तो तत्वों की संख्या स्वयं, ही अट्ठाईस हो जाये।

प्यारे उद्धव अगले नम्बर 1333 पच्चीस तत्व के नाम बताऊँ।
पुरुष, प्रकृति महत्तत्व अंहकार, पाँचभूत मिल तेइस गिनाऊँ॥

श्रोत्र, त्वचा चक्षु, नासिका और रसना ये पाँच ज्ञानेन्द्रियां।
वाक् पाणि, पाद, पायु और, उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियां॥
और मन जो है दोनों, ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां।
प्यारे उद्धव. इस प्रकार, ये हो गई ग्यारह इन्द्रियां॥
ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय हैं, शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श।
इस प्रकार ये तीन नौ, ग्यारह और पाँच-अंडबाईस तत्व॥
सृष्टि के आरम्भ में कार्य कारण रूप प्रकृति ही रहती।
वही सत रज तम गुण से, स्थिति उत्पत्ति संहार करती॥
कारण धातु विकार प्राप्त कर, पुरुष ईक्षण से शक्ति प्राप्त कर।
मिलकर सृष्टि निर्माण करते, प्रकृति का आश्रय लेकर॥
उद्धव जी जो लोग तत्वों की, करे स्वीकार सात संख्या। } दोहा
पंच भूत और छठा जीव, परमात्मा को माने सातवां॥ }
देह इन्द्रिय और प्राणादिकी, उत्पत्ति पंच भूतों से हुई।
इसीलिए उद्धव जी ने, इन्हें अलग गिनने नहीं॥
उद्धव जी जो लोग केवल, छः तत्व स्वीकार करते। } दोहा
वे पाँच भूत माने और छठा परमात्मा को कहते॥ }
परमात्मा पंच भूत युक्त हो, देहादि सृष्टि करता है।
और उद्धव जी उसमें, जीव रूप प्रवेश करता है॥
जो लोग कारणरूप में चार ही तत्व स्वीकार करते। } दोहा
आत्मा से तेज जल पृथ्वी की उत्पत्ति हुई ऐसा कहते॥ }
और कहते जितने पदार्थ हैं सब इन्हीं से उत्पन्न होते।
वे लोग सभी कार्यों को, इन्हीं में समाप्त कर लेते॥
उद्धव जी जो लोग बताते, सत्रह तत्वों की संख्या। } दोहा
पाँच पाँच भूत तन्मात्रा, ज्ञानेन्द्रिय, एक मन और एक आत्मा॥ }

जो लोग तत्वों की संख्या, सोलह बतलाते हैं उद्धवजी।
उन तत्वों की गणना भी, इसी प्रकार है उद्धव जी॥
अन्तर केवल इतना ही है कि वे आत्मा में मन का भी।
समावेश कर लेते हैं, ऐसे संख्या सोलह रह जाती॥

जो लोग तेरह तत्व मानते वे पंच भूत पाँच ज्ञानेन्द्रिय।
एक मन एक जीवात्मा परमात्मा को कहें तेरहवां॥ } दोहा
जो लोग ग्यारह तत्व मानते वे पाँच भूत पाँच ज्ञानेन्द्रियां।
और ग्यारहवीं आत्मा का, अस्तित्व स्वीकार किया॥
प्यारे उद्धव जो लोग भी, तत्वों की संख्या ग्यारह मानते।
पंच भूत मन, बुद्धि अहंकार, नौवां तत्व पुरुष को मानते॥
उद्धव जी इस प्रकार क्योंकि मुनियों ने अलग अलग गणना की है।
सबकी संख्या युक्ति युक्त है, सबका कहना उचित ही है॥ } दो
50-

जो लोग तत्व ज्ञानी हैं उन्हें किसी भी मत बुराई ना दीखती।
प्यारे उद्धव उनके लिए तो, सब कुछ है ठीक ही॥

उद्धवजी बोले - पुरुष प्रकृति, एक दूसरे से भिन्न सर्वथा। } दोहा
आपस में इतने घुल मिल गये, उनका भेद नहीं जान पड़ता॥
प्रकृति में पुरुष, उसमें प्रकृति, अभिन्न से प्रतीत होते हैं।
अब हे श्याम सुन्दर जी, हो भिन्नता स्पष्ट कैसे॥
इनकी भिन्नता अभिन्नता को, लेकर सन्देह है कमलनयन। } दोहा
अपनी युक्ति युक्त वाणी से, करें मेरा सन्देह निवारण॥
भगवन आपकी ही कृपा से, जीवों को ज्ञान होता है।
और आपकी माया शक्ति से, उनके ज्ञान का नाश होता है॥
अपनी आत्म स्वरूपिणी माया की, विचित्र गति जानते आप ही।
अतः मेरा सन्देह मिटाने, में समर्थ हैं आप ही॥

श्री कृष्ण बोले-प्रकृति-पुरुष आत्मा-शरीर दोनों में भेद।
जगत में जन्म-मरण बुद्धि दोष लगे रहने विकार अनेक॥
माया भेद बुद्धि पैदा करती, अपने सत रज आदि गुणों से।
अधियज्ञ आधिदैव आधिभूत कहते इन्हें तीन नामों से॥ दो।
आँख नेत्रेन्द्रिय अधियज्ञ है, आधिभूत विषय रूप उसका।
और अंश है आधिदैव, नेत्र गोलक में सूर्य देवता॥
ये तीनों परस्पर एक दूजे के आश्रय से सिद्ध होते हैं।
अतः अधियज्ञ आधि दैव और, अधिभूत परस्पर साक्षी रहते हैं॥ दो।
परन्तु सूर्य तीनों की अपेक्षा से सुनना क्योंकि स्वयं सिद्ध है।
आत्मा भी भेदों के मूल कारण, उनका साक्षी उनसे परे है॥
वही अपने स्वयं सिद्ध प्रकाश से, सिद्ध पदार्थों की मूल सिद्धि।
और उसी के प्रकाश से, सब का प्रकाश होता उद्धवजी॥
उद्धव जी जिस प्रकार आँख, चक्षु के बनाये तीन भेद।
त्वचा, श्रोत्र, जिह्वा नासिका, और चित्त के भी तीन तीन भेद॥ दो।
सुनो क्रमशः इनके तीनों भेद त्वचा, स्पर्श, वायु तीसरा।
~~[illegible]~~
श्रोत्र का श्रवण, शब्द है, और तीसरा है दिशा॥
जिह्वा का जिह्वा रसावरण, गन्ध अश्विनीकुमार नासिका।
चित्त चिन्तन-विषय वसुदेव, मन, मनविषय और चन्द्रमा॥
अहंकार, उसका विषय रुद्र, बुद्धि समझने का विषय ब्रह्मा।
इन सभी त्रिविध तत्वों से, कोई सम्बन्ध नहीं आत्मा का॥
प्रकृति से महत्तत्व बनता है, और महत्तत्व से अहंकार।
अतः अहंकार गुण क्षोभ से पैदा, प्रकृति का ही एक विकार॥
अहंकार के तीन भेद हैं सात्विक तामस राजस उद्धवजी। दो।
अहंकार ही अज्ञान और, विविधता मूल कारण उद्धव जी॥ दो।

आत्मा ज्ञान स्वरूप उसका पढ़ाई से ना कोई विवाद
मूल कारण भेद दृष्टि है, जिनने भी है बाद विवाद।।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विवाद का कोई प्रयोजन नहीं।
मुक्ति से विमुख लोग, इस विवाद से मुक्त नहीं।।

उद्धव जी ने पूछा- भगवन, जो जीव हैं आपसे विमुख।
ऊँची नीची योनियों में जाते, पाप-पुण्य के फल स्वरूप।।

अब प्रश्न उठता है कि वे, कैसे समझे हैं भगवन।
आत्मा का दूसरे शरीर जाना अकर्ता का कर्म व जन्म-मरण।।

हे गोविन्द जो हैं अज्ञानी, इस बारे नहीं सोच सकते।
और इस विषय के विद्वान, संसार में प्रायः नहीं मिलते।।

क्योंकि सभी लोग आपकी, माया की मूल भुलैया में पड़े हुए।
इसलिए आप ही कृपा करके, मुझे इसका रहस्य समझाये।।

श्री कृष्ण जी बोले- उद्धव जी, मन है कर्म संस्कार आधार।
भोग प्राप्ति को पाँच इन्द्रियाँ, कर्म संस्कारों अनुसार।।

यही लिंग शरीर कर्मानुसार, शरीरों में आना जाना।
आत्मा इससे अलग है, वह कहीं नहीं आना जाना।।

परन्तु जब वह अपने को, लिंग शरीर ही समझ बैठता।
अहंकारी होने पर उसे भी, अपना आना जाना प्रतीत होता।।

कर्माधीन मन विषय चिन्तन कर, उन्हीं में लीन हो जाता।
धीरे धीरे स्मृति, पूर्व अनुसंधान भी उद्धव नष्ट हो जाता।।

उन देवादि शरीरों में वह, इतना तल्लीन हो जाता है।
कि जीव को पूर्व शरीर का, स्मरण भी नहीं रह जाता।।

किसी भी कारण शरीर भूलना, उद्धव जी मृत्यु कहलाता।
जीव में नूतन शरीर धारण, पर वह जन्म कहलाता।।

स्वप्न कालीन व मनोरथ कालीन काया अभिमान करना उद्धव।
जैसे कहा जाता है इन्हें, स्वप्न और मनोरथ उद्धव।} दोहा
Part-90

वर्तमान देह में स्थित जीव, पूर्व देह स्मरण ना करता।
वैसे ही स्वप्न स्थित जीव, पहले स्वप्न को याद ना करता॥
पुनः उस वर्तमान स्वप्न और मनोरथ पूर्व सिद्ध होने पर भी।} दोहा
वे जीव अपने का समझना, नवीन-सा ही उद्धव जी॥
इन्द्रियों के आश्रय मन या, शरीर की सृष्टि से उद्धव।
यह उत्तम मध्यम अधम की, त्रिविधता भासती उद्धव॥
अभिमान से आत्मा बाह्य आभ्यन्तर भेद मालूम होता।} दोहा
जैसे बिना दृष्ट पुत्र के मित्र-शत्रु के लिए भेद हेतु-होता।}
काल की गति अति सूक्ष्म है नहीं देखा जा सकता उद्धव।
उत्पत्ति नाश होते रहते हैं, पर नहीं देखते उद्धव॥
जैसे काल प्रभाव से प्रकृति की, अवस्थाएं बदलती रहती।
वैसे ही प्राणी शरीर की, अवस्था आयु बदलती रहती॥
दीये की लौ, नदी प्रवाह, फल की विभिन्न अवस्थाएं।
ये नहीं दीपक नदी प्रवाह, ऐसा कहना मिथ्या है॥
विषय चिन्तन में समय संकल्प अविवेकी पुरुष का वैसे ही।} दोहा
वे कहना कि-मैं नहीं पुरुष, उद्धव सब मिथ्या ही॥}

यद्यपि वह ज्ञान पुरुष भी न पैदा ना मरता ही है,
किन्तु उत्पत्ति होती पैदा होना और मरना-सा भी है॥
गर्भाधान गर्भवृद्धि जन्म, बालावस्था दूसरा वय।
जवानी, अधेड़ बुढ़ापा मृत्यु शरीर की ये नौ अवस्था॥
उसके मनोरथ के अनुसार है वे ऊँची नीची अवस्था।
अज्ञानवश इन्हें अपनी मानकर वे चारों भटकने लगता॥

पिता को पुत्र के जन्म से, पुत्र को पिता मृत्यु से,
अनुमान कर लेना चाहिए, जन्म मरण का अपने अपने॥

जैसे जौ-गेहूँ की फसल, बोने पर उग आती है,
[illegible]
और पक जाने पर, उन्हें जो काट दी जाती है॥ } दोहा

किन्तु जो पुरुष उनके उगने और कटने का साक्षी है,
वही उन वह पुरुष, उनसे सर्वथा पृथक ही है॥

जैसे ही जो शरीर और उसकी अवस्था का साक्षी है,
वही उन वह पुरुष, शरीर से सर्वथा पृथक ही है॥

ऐसे
(अज्ञानी प्रकृति शरीर से आत्मा का विवेचन नहीं करते) } दोहा
वे उसे उनसे नितान्त, अलग अनुभव नहीं करते॥

और उन्हीं विषय भोगों में सच्चा सुख मानने लगते,
उसी में मोहित होकर वे, इस संसार में भटकते॥

तब जीव अपने कर्मानुसार जन्म मृत्यु चक्र में भटकता,
तब सात्विक कर्म-आसक्ति से, मनुष्य लोक देवलोक में जाता॥
राजसिक कर्मों की आसक्ति से मनुष्य असुर योनि में जाता,
और तामसी कर्म आसक्ति से, भूत-प्रेत पशु पक्षी योनि पाता॥ } दो

वही उन जो मनुष्य, किसी को नाचे गाते देखता,
तब उसका करके अनुकरण, स्वयं नाच गाने लगता,

वैसे ही जब जीव बुद्धि के उन जो जन गुण देखता,
निष्क्रिय हो जाने पर भी अनुकरण को बाध्य होता॥
जैसे नदी जल के हिलने ही, तट प्रतिबिम्ब देते हिलते दिखाई,
जो घूमते नेत्र के साथ साथ पृथ्वी घूमती सी देती दिखाई॥

जो मन सोचे स्वप्न में देखे भोग पदार्थ होंगे अलीक ही।
वैसे ही संसार सकल असत्य आत्मा को नित मुक्त समानही।। ६।

विषयों के सत्य न होने पर जीव विषयों का चिन्तन करता।
उसका यह संसार चक्र कभी उद्धव जी निवृत्त न होता।।
इसलिए प्रिय उद्धव तुम, इन्द्रिय विषय मन से त्यागो।
ये संसार सांसारिक भेदभाव भ्रम मूलक ऐसा ही समझो।।

यदि अपनी मार-पीटे, निन्दा करे उपहास करे।
बाँधे थूक दे, पैसे छीने निकला से निकालने की चेष्टा करे।।
इनका सब कुछ हो जाने पर उद्धव जी मानी को चाहिए। ७।
बुद्धि द्वारा ही अपने को, आत्मदृष्टि से बचा लेना चाहिए।।
उद्धव जी बोले - हे मानद, आदरणीय दुर्जन तिरस्कार।
मैं इसे समझूं, उपदेश सुन, समझाइये कुछ इस प्रकार।।
जो आपके चरणों के दास, उन शान्त पुरुषों को छोड़कर। ८।
अन्य सभी का तिरस्कार सहना है अत्यन्त दुष्कर।।

तेईसवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद्भागवत का ग्यारहवां स्कन्ध, तेईसवां अध्याय।
जिसमें श्री शुकदेव जी ने निमि को ब्रह्मण संवाद सुनाया।।

श्री शुकदेव जी बोले - परीक्षित श्रवण मोहन प्रभु लीला कथा।
श्री कृष्ण ने उद्धव प्रश्न पर, प्रश्न प्रशंसा करके कहा।। १।

देव गुरु वृहस्पति शिष्य उद्धव जी, ऐसे सन्त पुरुष नहीं मिलते।
जो दुर्जन कटु वाणी से निंदे, अपना दृढ़ सम्भाल सके।।
मर्म भेदी बाण भी उनको पीड़ा न पहुँचाते उद्धव।
जिनने दुष्ट जनों के मर्मान्तक, बाण वाण पहुँचाये उद्धव।।

1340

इस विषय में महात्मा लोग, प्राचीन इतिहास कहा करते।
वही सुनाता हूँ तुमको, सुनो उसे मन लगाकरके।।

प्राचीन समय की बात है, उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता।
धन सम्पदा का मालिक था, खेती व्यापारादि करता।।
उद्धव जी नाम बहुत ही कृपण, कामी और लोभी था।
क्रोध की तो पूछो ना पूछो, बात बात पर आता था।।
भाई बन्धु और अतिथियों को, मीठी बात से प्रसन्न नहीं करता। } दोहा
अन उद्धव जी उनको कभी, खिलाने पिलाने की बात ही भूला।।

उद्धव जी वह धर्म कर्म से रीते घर में रहता था।
चमड़ी जाये दमड़ी न जाए, यही सिद्धान्त था उसका।।
उसकी कृपणता से घरवाले, नौकर चाकर सभी दुखी रहते।
और मन ही मन उसके, अनिष्ट का चिन्तन करते।।
वह लोक परलोक दोनों में, इतना गिर गया था।
कोई भी उसे प्रिय, व्यवहार ना करता था।।
बस वह पशुओं के समान, धन की रखवाली करता था। } ६।६।
उस धन से ना धर्म कमाता, ना भोग ही भोगता था।।

इस प्रकार बिगड़ गये उससे, पंच महा यज्ञ आगी देवता।
आय: जाता रहा वो साहूकार, जिसके बल धन टिका था।।
जिस धन को उसने बड़े, परिश्रम से इकट्ठा किया।
वह धन उसी के आँखों के सामने, ही नष्ट भ्रष्ट हो गया।।

कुछ धन कुटुम्बियों ने छीना, कुछ ले गये चोर चुराके।
कुछ आग आदि लगने से नष्ट हो गया दैवी कोप से।।
कुछ समय के फेर ने मारा, कुछ लोगों ने ले लिया।
बचा खुचा सब दण्ड रूप, शासकों ने हड़प लिया।।
सब कुछ जाता रहा उसका, घरवालों ने मुँह फेर लिया। } दोहा
उद्धव जी अब उसे पड़ी, अध्यात्म चिन्तन की फिक्र।।

उसकी मन रूपेद से भरा, आंसुओं से गला रुँध जाता।
इस तरह चिन्ता करते करते उसे उद्धव बैराग्य हो जाता।।

मन ही मन लज्जा कहते व्यर्थ है मैंने स्वांग को सजाया।
जिस धन के लिए मेहनत की, वो मेरे किसी काम ना आया।।

कृपण को धन से सुख ना मिले, उसकी चिन्ता में जलते रहते।
और मरने पर चर्म न करते सीधे ही नरक में जाते।।

जैसे थोड़ा सा कोढ़ भी सुन्दरता को नष्ट कर देता।
वैसे ही लोभ भरा गुणागर, उद्धव जी पानी फेर देता।।
धन कमाना उसे बढ़ाना, खर्च करना या नष्ट होना।
जहाँ देखो वहीं निरन्तर, परिश्रम भय का ही सामना।।
चोरी हिंसा झूठ दम्भ काम, और क्रोध गर्व अभिलाषा
अहंकार भेदबुद्धि स्पर्धा, लम्पटता जुआ और शराब।। } दोष।

ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्य में, आते हैं धन के कारण ही।
कल्याण कामी पुरुष को चाहिए, छोड़ दे अनर्थ दूर से ही।।
सारे सम्बन्धी आई बन्धु, कौड़ी कारण फट जाते हैं।
यहाँ तक कि उद्धव जी, एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।।
ये लोग थोड़े से धन देख, क्षुब्ध क्रुद्ध हो जाते हैं।
सौहार्द सम्बन्ध छोड़, प्राण लेने पर उतारू हो जाते हैं।।

मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मण शरीर को प्राप्त कर अनादर करते हैं।
अमृतमयी प्राप्त हो स्वार्थ परमार्थ नाश करते हैं।। } दोष।
मनुष्य शरीर मोक्ष और स्वर्ग का द्वार है उद्धव।
कौन बुद्धिमान धन को, चक्कर में फँसा रहे उद्धव।।
जो देव पितर, ऋषि कुटुम्बी को आदर सत्कार करता।
धन रत्न धान्य की कमी, अधोगति को प्राप्त होता।।

श्री सूरदास बोले - हे उद्धव, यों ब्राह्मण बार-बार सोचे।
मैंने मन में समझ संतोषा, इससे लोग मोक्ष का पावें।
बड़े बड़े विद्वान भी जनकी, भूलता से रहते हैं भ्रमित।
हो न हो ये संसार की, किसी माया से हो रहे मोहित।।
यह मनुष्य शरीर काल के, विकराल गाल में पड़ा।
जन्म मृत्यु में डालने वाले, संकट को मैं से लगा ही मजा।।
सचमुच अज्ञान प्रबल है, जो पुरुष इस दशा में पहुँचाए। } दोहा
ले संसार सागर पार उतारे, वह ईश्वर मिल पाए।।
अब मैं शेष आयु में, परमार्थ कार्य करूंगा।
अपने इसी शरीर को, न पृथ्वी में सुरक्षा डालूंगा।।
अभी निराश होने की कोई ऐसी बात नहीं।
राजा रघुवंश ने दो घड़ी में, अगणित धन प्राप्ति की थी।।
श्री सूरदास बोले - उस ब्राह्मण ने मैं-मेरे की गांठ खोल दी।
इसके बाद प्रसन्न होकर, हो गया सच्चा संन्यासी।।
उसके मन में किसी वस्तु, पदार्थ की न रही आसक्ति।
मन इन्द्रिय प्राणों को, वश में करने की आ गई शक्ति।।
पृथ्वी पर स्वछन्द विचरना, भिक्षा हेतु नगर गांव जाना। } दो
किन्तु इस प्रकार जाना, कि कोई उसे पहचान न पाना।। } हो
भिक्षुक अलक्षित होगया पूरा, दुख उस पर टूट पड़े।
तरह तरह से कर तिरस्कार उसको नंगा करते।।
कोई उसका दण्ड छीनता, कोई भिक्षापात्र झटकता।
कोई रुद्राक्षमाला छीनता, कोई कमण्डल उठा ले जाता।।
कोई सांगली तो कोई वस्त्र, इधर उधर डाल देते उसके।
कोई न वस्तु लौटा देता, कोई दिखा छीनने उसके।।

classmate

नदी के किनारे उन्हें आसन करने बैठना बोला।
कोई शकुन कोई सगुन, उसने जैसे ही उच्चारा॥
मौनी आज धून को नरहनरहे बोलने के लिए विवश करते। } दो
और उन्हें जब ना बोलने पे गुस्से में उसे पीटते॥ } हो
कोई उसे चोर बताना, रस्सी में उसे बाँध नचाते।
कोई उसका तिरस्कार कर, इस प्रकार नाच कराते॥
कहते - देखो इस ढोंगी को, घरवालों ने घर से निकाला।
धन सम्पत्ति जो भी रही, भीख माँग कर रखे निवाला॥
देखो यह मोटा ताजा भिखारी, चर्बी से तन के समान।
मौन रहे उत्तर ना देना, ढोंगी है बगुले के समान॥
कोई उसकी हँसी उड़ाता, कोई अपशब्द बोल देता।
नाना भाँति की आपत्ति कोई, उसे घर में बंद कर लेता॥
किन्तु वह ब्राह्मण चुपचाप, दुष्टों का अन्याय सहता। } दो
कभी दैविक कष्ट उठाता, कभी भौतिक पीड़ा सहता॥ } हो
परन्तु भिक्षुक के मन में, कभी कोई विकार ना होता।
पूर्व जन्म का फल समझ, सब कुछ चुपचाप भोगता॥
नीच गिराने की चेष्टा करते, पर वह धर्म पर स्थिर रहता।
सात्विक धैर्य आश्रय ले, कभी कभी वो ऐसा कहता॥
ब्राह्मण कहता- मेरे सुख दुख का, कारण नहीं ये मनुष्य देवता। } दो हो
ना ये सीर ना गृहकर्म आदि, मन ही इसका सर्व सर्वा॥ } हो
सत्यसुत्य मन बड़ा ही बलवान, विषयों की सृष्टि की इसने।
और विषयों के कारण गुण, उनसे सम्बन्धित वृत्तियों की॥
सत रज तम कर्म होते उन वृत्तियों के अनुसार ही। } दो
जीव की विविध गतियां होती, उन कर्मों के अनुसार ही॥ } हो

मन संग आत्मा निष्क्रिय है मन ही समस्त चेष्टा करता।
यह शुद्ध शक्ति प्रधान है, मुझ जीव का सनातन सखा॥

और अपने अलुप्त ज्ञान से, सब कुछ देखता रहता।
मन के द्वारा ही उसकी, अभिव्यक्ति होती है सदा॥
जब यह मन स्वीकार कर, विषय भोगों को बन जाता।
तब कर्म संग आसक्ति कारण, यह उनसे बँध जाता॥

यम नियम दान धर्म सत्कर्म ब्रह्मचर्य और वेदाध्ययन। } दोहा
इन सबका अन्तिम फल है, कि एकाग्र हो जाये मन॥

जिसका मन शान्त समाहित, उसे सत्कर्म फल प्राप्त हुआ।
और जिसका मन चंचल, उसे लाभ अभी नहीं हुआ॥
हमारी सभी पाँचों इन्द्रियां, हैं हमारे मन के वश में।
और मन नहीं किसी के भी इन्द्रियों के वश में॥
जो इस बलवान मन को, अपने वश में कर लेता।
वही देव देव कहलाता, वही है इन्द्रिय विजेता॥
सचमुच मन बड़ा शत्रु है इसका आक्रमण सहा न जाये। } दो
यह बाहरी शरीर ही नहीं, मर्मस्थान भी बेधता जाये॥ } हा

मनुष्य को चाहिए कि, इसी शत्रु पर विजय पाये।
किन्तु मूर्ख इसे छोड़कर, मनुष्यों को ही शत्रु बनाये॥
मन कल्पित शरीर को ही मैं-मेरा मान बैठते।
इस भ्रम के फंदे में पड़ अज्ञान अन्धकार भटकते॥

~~यदि मान लें मनुष्य ही~~

यदि मान लें मनुष्य ही, कारण है सुख दुःख का। } दो
फिर भी सुख दुःख से, कैसा सम्बन्ध है आत्मा का॥ } हा
क्योंकि सुख दुःख पहुँचाने वाला यह भौतिक शरीर।
और इस सुख दुःख को, भोगने वाला भी यही शरीर॥

भोजन करते समय यदि दाँतों से जीभ कट जाये।
चोट। होने लगे तो, मनुष्य किस पर क्रोध दिखाये।
यदि ऐसा मान लिया जाये देवता ही हैं कारण दुःख के।
आत्मा की क्या होती हानि, होने वाले इस दुःख से॥

यदि देव ही दुःख का कारण, तो इन्द्रियाभिमानी भोक्ता के ही।
और देवता सभी शरीर में, जो एक में व दूसरे में भी॥ ३ दो
~~एक के यदि एक अंग~~
शरीर के एक अंग से, दूसरे अंग से चोट लग जाये।
ऐसी दशा में भला, किस पर क्रोध किया जाये॥
आत्मा ही सुख दुःख का कारण, तो वह अपना दूसरा नहीं।
यदि ऐसा मान चलें तो, आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं॥ ३ दो
यदि दूसरा कुछ प्रतीत होता, तो वह केवल है मिथ्या।
न सुख न दुख फिर, क्रोध का निमित्त ही क्या॥

यदि यह सुख दुख निमित्त, तो आत्म शरीर पर हो ना।
अजन्मा आत्मा उन ग्रहों, शरीर से है परे सर्वथा॥
यदि हम कर्मों को मानें, अपने सुख दुःख का कारण।
तो अन्य कर्मों से भला, आत्मा का क्या प्रयोजन॥
*योंकि वे एक पदार्थ के, जड़ चेतन होने से हो सकते।
विकार युक्त हीनाधिक वस्तु से ही कर्म हो सकते॥
अतः वह जड़ होनी चाहिए, विकार युक्त होने के कारण। ३ दो
और चेतन होनी चाहिए, हीनाधिक ज्ञान रखने कारण॥ ३ दो

किन्तु देह अचेतन है, आत्मा साक्षी मात्र उसमें।
कर्म का कोई आधार नहीं, तो क्रोध किस पर करें॥
यदि काल को ही माने हम कारण अपने सुख दुःख का।
किन्तु काल आत्म स्वरूप, आत्मा पर कैसा क्रोध उसका॥

आगा आगा को न जानाजे, अर्द्ध अर्द्ध पि चलना न सकना।
मैं ते ही आत्मा स्वरूप काल, आत्मा को सुरक्षा पैं ते पहुँचाना॥
आत्मा प्रकृति के स्वरूप धर्म कार्य गन्ध से रहित है
उसे कभी किसी के द्वारा, कष्ट स्पर्श होता ही नहीं॥
वह तो जन्म मृत्यु चक्र में, भटकने वाले अहंकार का होता
जो जानलेना को अप निमित्त, से कभी अधमित न होता॥ दो
अब मैं भी प्रभु निष्काम, आत्म में ग्रहण करूंगा।
हरि चरण कमल सेवा से, अज्ञान कारागार पार करूंगा॥
श्री कृष्ण बोले- उद्धव जी, ब्राह्मण कंगाल बन्धु हुआ
मानो उसका नाश सारा, कलेश ही दूर हो गया॥ दो
अब वह ब्राह्मण इस, संसार से विरक्त हो गया।
और सन्यास लेकर, पृथ्वी पर स्वछन्द विचरण॥
~~[illegible]~~ सुख दुख नाइसा कोई, आसित होता मनुष्य चित्त।
इस संसार के भीतर मित्र, शत्रु भेद है अज्ञान कल्पित॥ दो
अतः उद्धव सन्मय हो मुझमें, करलो मन को अपने वश में।
और नित्यमुक्त होकर, स्थित हो जाओ मुझ में॥
यह भिक्षु का गीत कहा है, ब्राह्मण निष्ठा सूचित।
जो सुनता सुनाता करे धारण, छूटता वो सिद्ध समान॥ दो

चौ नीसवां अध्याय

~~[illegible]~~

अब सुनो श्रीमद भागवत का, ग्यारहवां स्कन्ध- चौनीसवां अध्याय (आदर्श)
जिसमें भगवान श्री कृष्ण ने, उद्धव को संसार योग बताया॥

श्री कृष्ण बोले- उद्धव जी सुनाना संसार में आपको निर्णय।
प्राचीन काल के बड़े बड़े ऋषि मुनि ने किया निश्चय ॥ दोहा
पहले उद्धव जानिये जीव ईश्वर अलिंगनि समझ लेना।
नो सुरत दुरत रूप भ्रम का नरकाल त्याग कर देना॥

सृष्टी से पूर्व प्रलय काल में मनुष्य जन्म किसी को होते।
दृश्य दृष्टा जगत जीव भेदभाव रहित ब्रह्म ही होते॥ दोहा
इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं।
वह केवल अद्वितीय सत्य है उसमें मन वाणी की गति नहीं॥
वह ब्रह्म ही माया और उसमें प्रतिबिम्ब जीव के रूप में।
दो भागों में विभक्त हुआ, दृश्य और दृष्टा के रूप में॥

जगत में कार्य कारण रूप जो उस वस्तु को प्रकृति कहते।
दूसरी जो ज्ञान स्वरूप है, उस वस्तु को पुरुष कहते॥
शुभ अशुभ कर्मानुसार मैंने प्रकृति को क्षुब्ध किया।
उससे तब सत रज तम तीन गुणों को प्रकट किया॥
उनसे क्रियाशक्ति प्रधान सूत्र ज्ञानशक्ति महत्तत्व प्रकट हुए। दोहा
और उससे उद्धवजी वे दोनों परस्पर मिले हुए॥

अब महत्तत्व में हुआ विकार और अहंकार व्यक्त हुआ।
यह अहंकार ही जीवों को मोहित करने में समर्थ हुआ॥
सात्विक राजस और तामस तीन तरह का है अहंकार।
पंचतन्मात्रा इन्द्रिय और मन का कारण है अहंकार॥

तामस से पंचतन्मात्रा और उनसे पाँच भूत हुए पैदा। दोहा
राजस से इन्द्रिय सात्विक से इन्द्रिय अधिष्ठाता ग्यारह देवता॥
ग्यारह देवताओं में सम्मलित पाँच ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय।
और ग्यारहवां मन है, ग्यारहवें ग्यारह इन्द्रिय॥

तुम्हारे उद्धव ये सभी पदार्थ मेरी प्रेरणा से एकत्रित होकर
ब्रह्माण्ड रूप अण्ड पैदा किया सभी ने आपस में मिलकर ।। } दो
जल अण्ड जल में स्थित हुआ मैं इसमें विराजमान हुआ ।
मेरी नाभि से कमल निकला, ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ ।।
विश्व रचयिता के अभाव पर, ब्रह्मा ने बड़ी तपस्या की ।
पुनः अब: स्वः तीन लोक, और लोकपालों की रचना की ।।
देवताओं को स्वर्ग लोक, भूत प्रेत को भुवर्लोक दिया ।
और मनुष्यों आदि के लिए, पृथ्वी लोक का निश्चय किया ।।
त्रिलोक के ऊपर महर्लोक, तपलोकादि सिद्ध निवास बनाये । } दो
असुर नागों को धरा के नीचे अतल वितल स्थान पाताल बनाये ।। } हो
त्रिगुणात्मक कर्मों से [redacted] विविधगतियां प्राप्त होती ।
योग तप स्वाध्याय से महर्लोक, जन तपलोक गतियां प्राप्त होती ।।
इसके अतिरिक्त उद्धव, जो भक्ति योग पर चलता है ।
निश्चित रूप वो उसे, मेरा परमधाम मिलता है ।।
यह सारा जग कर्म और उनके संस्कारों से मुक्त उद्धव । } दो
मैं ही कालरूप कर्मानुसार, फल विधान करता हूँ उद्धव ।। } हो
इस गुढ़ज्ञान में पड़, कभी डूबना कभी उबर आना ।
कभी उसकी अधोगति होती, कभी पुण्य गति प्राप्त करना ।।
जगत में छोटे-बड़े मोटे पतले जितने भी पदार्थ बनते हैं ।
सब प्रकृति पुरुष दोनों के संयोग से सिद्ध होते हैं ।।
जिसके आदि अन्त में जो, वही बीच में रहीं सत्य है ।
विकारों के केवल व्यवहार के, लिए की हुई कल्पना मात्र है ।।
उद्धव जी जैसे कुण्डल कंगन, ये सभी स्वर्ण के विकार । } हो
और घड़े सकोरे आदि, ये सभी मिट्टी के विकार । } हो

पहले थे सोना या मिट्टी थे 1349 बाद में भी सोना या मिट्टी।
और उड़ने वाली चींटियों के सभी हैं सोना या मिट्टी॥

महत्तत्व अहंकार सृष्टि करते, उनकी अपेक्षा परम सत्य हैं।
जो अविनाशी कार्य आदि अन्त रहे, उड़ने वाली वही सत्य हैं॥
इस प्रपंच का उपादान कारण, प्रकृति हैं उड़ने वाली।
परमात्मा अधिष्ठान हैं प्रकट करती काल उड़ने वाली॥ } 6।

व्यवहार काल की यह, त्रिविधता है प्रत्यक्ष स्वरूप।
और न्यारे उड़ने वाली, में ही दूर यह भ्रम रूप॥

परमात्मा की ईक्षण शक्ति, जब तक काम करती रहती।
और जब तक उनकी, पालन प्रवृत्ति बनी रहती॥
तब तक जीवों के कर्म भोग, कार्य कारण रूप को उड़ने।
अथवा पिता-पुत्रादि रूप से, सृष्टि-चक्र चलता उड़ने॥

प्यारे उड़ने यह विराट ही विभिन्न प्रकार के लोकों की। } 7।
सृष्टि स्थिति और संहार की है वास्तविक लीला भूमि॥

जब में कालरूप आप ही प्रलय का संकल्प करता।
तब ये विराट रूप ही, विनाश को प्राप्त हो जाता॥

लीन होने की सूक्ष्म प्रक्रिया - पानी शरीर अन्न में लीन। } 8।
अन्न बीज में, बीज भूमि में, भूमि तन्मात्रा होती लीन॥
गन्धजल में जल रस में, रस तेज व तेज रूप में।
रूप वायु में वायु स्पर्श में, लीन होना स्पर्श आकाश में॥
आकाश शब्द तन्मात्रा में लीन, इन्द्रिय देवताओं में।
[illegible]
और अन्ततः सत्ता जाती है, ये राजस अहंकार में॥

राजस अहंकार लीन होता, सात्त्विक अहंकार रूप मन में। } 9।
शब्द तन्मात्रा लीन, पंच ज्ञानेन्द्रिय तामस अहंकार में। } 9।

जग मोहिन कर्ता अहंकार, महत्तत्व में लीन हो जाता।
ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति प्रधान, महत्तत्व गुणों में लीन हो जाता॥
गुण अव्यक्त प्रकृति में, प्रकृति अविनाशी काल में।
काल माया बस जीव में, जीव लीन होता आत्मा में॥

आत्मा लीन नहीं होता है, अपने स्वरूप स्थित रहता है।
यह जग सृष्टि और लय की, अवधि और अभिष्ठाता है॥

प्यारे उद्धव जी जो मनुष्य, ऐसी विवेक दृष्टि से देखता।
उसके चित्त में यह प्रपंच, भ्रम पैदा नहीं हो सकता॥
यदि हो भी जाये तो भी, अधिक समय ना ठहर सकता।
ज्यों सूर्य उदय होने पर, भला अन्धकार ठहर सकता॥

~~[redacted]~~

प्यारे उद्धव इस प्रकार मैं, तुमको संक्षेप विधि बताई॥
इससे पुरुष अपने स्वरूप हो, सन्देह की गांठ कट जाती॥

पच्चीसवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद्भागवत का, बारहवां स्कन्ध पच्चीसवां अध्याय।
जिसमें श्री कृष्ण ने तीनों गुणों की वृत्ति निरूपण बताया॥
श्री कृष्ण बोले- भक्तियों में, अलग अलग गुण प्रकाश होता।
जिसके कारण प्राणियों के, स्वभाव में अन्तर हो जाता॥
होकर सावधान सुनो उद्धवजी अब मैं तुमको बतलाता।
कौन कौन से गुण से, कैसा कैसा स्वभाव बनता॥
शम दम तितिक्षा विवेकपन, सत्य विषयों प्रति अनिच्छा।
स्मृति सन्तोष त्याग ज्ञान, विनय सरलता दृढ़ोत्साह॥

अब उद्धव ये सभी हैं, सत्व गुण की ही निशानी।
अब समझाओ उनके नाम, जो हैं रजोगुण की निशानी॥

दुःख। प्रयत्न घमंड लड़ना, ऐंठ अकड़, धन मांगना। } दोहा
भेद बुद्धि विषमोग हास्य हठपूर्वक उद्योग करना॥

अब सुनो तमोगुण की निशानी, क्रोधलोभ कलह हिंसा।
पारुष्य कलह शोक निद्रा भय भ्रम अकर्मण्यता॥

इस तरह ये थी तीनों गुणों की अधिकांश निशानी।
अब सुनो उनके मेल से, पैदा होने वाली वृत्तियाँ॥

मैं हूँ मेरा है ऐसी बुद्धि में मिश्रण है तीनों गुणों का।
मन विषय इन्द्रिय कारण, हो उद्यम पूर्वक वृत्तियों का॥

धर्म अर्थ काम में जब, मनुष्य संलग्न रहे उद्धवजी। } दो
सत्वगुण में श्रद्धा, रज से रति, तम से धन मिलता उद्धवजी॥

सकाम कर्म, गृहस्थी और, धर्माचरण में प्रीति रहे जब।
मनुष्य में तीनों गुणों का, मेल समझना चाहिए तब॥

मानसिक शान्ति जितेन्द्रियता से, पहचान करे सतगुणी पुरुष की। } दो
कामना से रजोगुणी क्रोध से, पहचान करे तमोगुणी पुरुष की॥

नैमित्तिक कर्म से करे मेरा भजन, वो पुरुष हो या स्त्री।
मेरे उद्धव उसे समझना, चाहिए हमको सतगुणी॥

सकाम भाव से करे जो भजन, उसको समझो रजोगुणी।
जो शत्रु की अमृत्यु हेतु, करे भजन वो है तमोगुणी॥

सत रज और तम इन, तीनों गुणों के कारण उद्धव। } दो
जीव शरीर साधन में, आसक्त हो बँध जाता उद्धव॥

जब सत्वगुण रजतम को, दबाकर आगे बढ़ता है।
तब पुरुष सुरत धर्म ज्ञान, आदि का भाजन हो जाता है॥

दूसरा गुण रजोगुण जो है भेदबुद्धि का कारण उद्धव।
रजोगुण का स्वभाव है आसक्ति और प्रवृत्ति उद्धव॥
जब रजोगुण मन तन को दबाकर आगे बढ़ता है।
तब मनुष्य दुःख कर्म यश लक्ष्मी से सम्पन्न होता है॥

तीसरा गुण तमोगुण जिसका स्वरूप है अज्ञान उद्धव।
तमोगुण का स्वभाव आलस्य और बुद्धि मूढ़ता उद्धव॥
जब तमोगुण मन रज को दबाकर आगे बढ़ता है। ८।
तब मनुष्य आशा मोह और हिंसा आलस्य में पड़ता है॥ ८।

उद्धव जब चित्त शान्त हो सारी इन्द्रियां शान्त हों।
मन गुण बुद्धि समझो जब मन में कोई आसक्ति ना हो॥
जब बुद्धि चंचल मन भ्रान्त इन्द्रियां विकार युक्त हो जायें।
तब यह समझना चाहिए कि रजोगुण जोर पकड़ता जाये॥
जब सोचने-इन्द्रिय विषयों को समझने में असमर्थ हो जाये। ७वें
अज्ञान विषाद बढ़ता जाये समझो तमोगुण जोर पकड़ता जाये॥ ७।

उद्धव जो सत्त्वगुण बढ़ने पर देवताओं का बल बढ़ता है।
रज से असुरों का, तम से राक्षसों का बल बढ़ता है॥
उद्धव जी सत्त्वगुण से सदैव जागृत अवस्था होती है।
रज से स्वप्नावस्था, तम से सुषुप्ति अवस्था होती है॥
उद्धव जी तुरीय इन तीनों से एक-सा व्याप्त रहता है।
और वही तुरीय उद्धव जी, शुद्ध एक रस आत्मा है॥
ऊपर के लोक मिलते हैं, उत्तरोत्तर सत्त्वगुण द्वारा। ६ठे
तमोगुण से अधोगति, मनुष्य शरीर रजोगुण द्वारा॥ ६।

जिसकी मृत्यु सत्त्वगुणों की वृद्धि के समय होती है।
(वाले) उद्धव उसे निश्चित ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

1353

जिसकी मृत्यु रजोगुण की वृद्धि के समय होती है।
उसे उद्धव जी उसे निश्चय ही मनुष्य लोक प्राप्ति होती है।।
और जिसकी मृत्यु तमगुण की वृद्धि के समय होती है।
उसे उद्धव जी निश्चय ही उसे नरक की प्राप्ति होती है।।

परन्तु जो त्रिगुणातीत हो गये हैं जीवन मुक्त।
उद्धव
उन्हें उद्धवजी निश्चय ही उन्हें होती है मेरी प्राप्ति।।

जब दृढ़निश्चय मुझे समर्पित निष्कामभाव से किया जाता।
तब वह सात्विक होता।। (१)

कर्म में यदि फल कामना तो वह राजसिक होता है। Part 1 — 91
कर्म में सताना या दिखाना है वह तामसिक होता है।।
तब उद्धव शुद्ध आत्मा का ज्ञान सात्विक होता है।
कर्ता भोक्ता राजस ज्ञान, शरीर समझे तामसिक होता है।।
इन तीनों स्तरों से विलक्षण मेरे स्वरूप का वास्तविक ज्ञान। (२)

~~तब उद्धव सुनो ध्यानसे~~ तब उद्धव सुनो ध्यानसे, वही कहलाता निर्गुण ज्ञान। (३)

वन में रहना सात्विक निवास, राजस है गाँव में रहना।
तामसिक जुआघर में रहना, निर्गुण निवास मन्दिर में रहना।
अनासक्त भाव कर्म कर्ता, कहलाता है सात्विक।
रागात्मक हो कर्म करे जो, कहलाता है वह राजसिक।।
वो तामसिक कहलाता जो, बिना सुने विचार कार्य करता। (४)
जो मेरी शरण अहंकार रहित, कर्म करे वो निर्गुण कर्ता।।

आरोग्य दायक पवित्र और, अनायास प्राप्त सात्विक भोजन।
स्वाद युक्त भोजन राजस, तामस है अपवित्र भोजन।। (५)

आत्म ज्ञान विषयक ज्ञानिक मूढ़ा, कर्म विषयक राजस मूढ़ा।
जो है अधर्म को नामस मूढ़ा, सेवी सेवा में निगुणा मूढ़ा।। दोहा

आत्मचिन्तन सुख सात्विक है राजस है विषय प्राप्त सुख।
अज्ञान प्राप्त है नामस सुख, मुझको मिले वे गुणातीत सुख।।

उद्धव जी ये सभी त्रिगुणात्मक, जन्म देह फल काल कर्म।
देव मनुष्य तिर्यग्दि शरीर, ज्ञान कर्म निष्ठा अवस्था।। दोहा

पुरुष और प्रकृति दोनों के, आश्रित है जितने भी भाव।
प्यारे उद्धव वे सारे, के सारे गुण सम कहलाए।।

अनुभव हो चाहे तो इन्द्रिय से, या सुने हो शास्त्रों द्वारा।
अथवा सोचे विचारे हो, वे सभी बुद्धि के द्वारा।।

जीव को जितनी भी योनियाँ अथवा गतियां प्राप्त होती।
वे सब ही उनके गुणों और, कर्मों के अनुसार होती।। दोहा

सब के सब गुण चित्त से, सम्बन्ध रखते उद्धव जी।
इसलिए जीव अनासक्त ही उन्हें जीत सकता उद्धव जी।।

उद्धव जी जो जीव इस पर, विजय प्राप्त कर लेता है।
भक्ति योग द्वारा मुझमें ही, परिनिष्ठित हो जाता है।।

और उद्धव जी अन्ततः वो, मेरा स्वरूप प्राप्त करता है। दोहा
जो आध्यात्मिक भाषा में, मोक्ष कहलाता है।।

मनुष्य शरीर बड़ा ही दुर्लभ, सम्भव सत्वज्ञान विज्ञान।
गुणों से आसक्ति हटा, मेरा भजन करे बुद्धिमान।।
रजतम गुण को जीतले, सत्वगुण के सेवन से।
इन्द्रियवश कर भजन, मेरा स्वरूप समझ के।।

चित्त शान्त कर निरपेक्षता द्वारा, विजय प्राप्त सत्त्वगुण करके भी।
जीव अपने जीवभाव छोड़, एक हो जाता ब्रह्म में ही॥

जीव सभी वृत्तियों से मुक्त हो, मुझ ब्रह्म दर्शन से पूर्ण होता।
फिर वह बाह्य या आन्तरिक, किसी भी विषय में नहीं जाता॥ ८।६।

छब्बीसवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद भागवत का, छब्बीसवां अध्याय ग्यारहवां स्कन्ध।
जिसमें श्रीकृष्ण सुनाये, पुरुरवा वैराग्योक्ति प्रसंग॥

श्री कृष्ण बोले - हे शरीर, मेरी प्राप्ति का सुरम्य साधन।
मुझ परमात्मा को प्राप्त करे, जो स्थित है उसके अन्तः करण में॥

जीव सभी योनियों गतियों, से सदा के लिए मुक्त होता।
गी गुणों द्वारा व्यवहार कर भी उनसे नहीं बँधता॥

जो लोग विषय सेवन और उदर पोषण में लगे हुये।
साधारण लोगों को चाहिये कि ऐसे लोगों से दूर रहे॥

क्योंकि उनका अनुगमनकर्ता की दुर्दशा होती वैसी ही।
जैसे अंधे के सहारे, चलने वाले अंधे की होती॥

उर्वशी जी इला नन्दन पुरुरवा, उर्वशी के विरह में बेसुध। ८।६।
शोक हरता लौ हुआ वैराग, उसने यह गाया ग्यारहवीं तक॥

उर्वशी उनको छोड़ कर राजमहल से भाग जब।
नग्न पुरुरवा उसके पीछे, पुकारते हुए दौड़े थे तब॥

उर्वशी को रहरने के लिए, पुरुरवा ने यह वाक्य कहा।
उर्वशी चली गई नहीं से, फिर ना आयी वो सोचा॥

उसने पुरुरवा का चित्त, कर लिया था आकृष्ट।
वर्षों तक विषय सेवन कर, फिर भी ना हुए थे तृप्त॥

तब पुरुरवा को अपनी, गलती का एहसास हुआ। ८।६।
अपने ही कर्मों पर उसको, बड़ी परिचाप हुआ॥

पुरुरवा ने पहलाने कुछ कहा, हाय मेरी मूरखता नां देखो।
किसना कलुषित कर दिया, वासना ने मेरे चित्त को॥
मेरा रोंआ गाला पकड़ा, उर्वशी ने बहुत उन्हें से।
कि जाने किसने कर्ज मेंने, रखो दिये अपनी आयु के॥

स्वर्ग अप्सरा था उदय हुआ, हाय यों भी ना जान सका।
वर्ष पर वर्ष बीत गये हाय मुझे पता ना चला॥
ओह! किसने आश्चर्य की बात मेरा इतना मोह बढ़ गया। } दोहा
कि मुझ चक्रवर्ती सम्राट को, स्त्रियों का खिलौना बना दिया॥
वह मुझे मेरे राजपाठ को, चली तिनके की तरह छोड़कर।
और मैं उस स्त्री के पीछे, पागल का दौड़ा नंगा होकर॥
गधे की तरह दुलत्ती सह, स्त्री के पैरों रहा दौड़ता।
फिर मुझमें प्रमाद नेजे, स्वामित्व भला कैसे हो सकता॥
स्त्री ने जिसका मन चुराया, नष्ट भाग लिया कालाभ नहीं। } दोहा
रंकाचलसेवन मौन निष्फल, इसमें कोई सन्देह नहीं॥
हानिलाभ का पता नहीं, अपने को पहिचान न जानता।
चक्रवर्ती सम्राट की मर्यादा, तक मैं नहीं जानता॥
उर्वशी हाथों पीकर सादिरा, मेरी वासना तृप्त न हुई।
सच ही कहा है कहीं, आहुतियों से अग्नि तृप्त हुई॥
उर्वशी ने भौतिक सुख से, मुझे बहुत समझाया था।
किन्तु मेरी बुद्धि पर, वासना का नशा छाया था॥

रस्सी के रूप में अज्ञान, सर्प की कल्पना करता रहा। } दोहा
उर्वशी का इसमें क्या दोष, मैं वासना जाल में फँसता रहा॥
कहाँ मैला कुचैला ये शरीर, कहाँ सुगन्ध गुण पुष्पोचित।
मन ने अज्ञानवश असुन्दर में, सुन्दरता को किया आरोपित॥

यह शरीर मात-पिता सम्भव, पवित्र की सम्पत्ति अपना। ३८।
स्वामी की रक्षा की वस्तु, कुत्ते गीधों का भोजन अपना॥ ६।
यह आत्मा की इच्छा है, या विषय इन्द्रियों का स्वाद ना।
बहुत सोचने विचारने पर, भी कोई निश्चय ना होता॥
मल-मूत्र से भरा हुआ, अत्यन्त अपवित्र है शरीर।
जला देने पर मट्टी, राख का ढेर हो जाय शरीर॥
इस शरीर के सड़ जाने पर, इसमें कीड़े पड़ जाते। ३९।
ऐसे शरीर पर लाड़ करे है, सोच न आते क्या कहते॥ ६।
अकारण हँस कहते - देखो, कितना सुन्दर स्त्री मुखड़ा।
सुथरा नाक मन्द मुस्कान, ऐसा जैसे चाँद का टुकड़ा॥
यह शरीर त्वचा मांस रुधिर मलमूत्र पीव से भरा हुआ।
मनुष्य इसमें रमे ज्यों कीड़े, और उसमें अन्दर क्या॥
इसलिए स्त्री या स्त्रीलम्पट, पुरुष संग ना करे स्वीकार।
विषय - इन्द्रिय संयोग से, मन में होता है विकार॥
ना देखी ना सुनी वस्तु को, मन में न ही हिलाए विकार। ४०।
विषय इन्द्रिय संयोग ना हो, मन अपने आप शान्त होता॥ ६।

मन वाणी काम आदि से, ना करे स्त्री-लम्पट संग कभी।
बड़े बड़े विद्वानों के लिए भी, मन इन्द्रिय विजय कठिन हैं॥
श्री कृष्ण बोले-उद्धव जी, पुरुरवा मन उठे ऐसे उद्गार। ४१।
उर्वशी मोह जाता रहा, हुआ आत्मस्वरूप का साक्षात्कार॥ ६।
अतः पुरुरवा की भाँति, कुसंग छोड़ सत्संग करे।
सत्पुरुष अपने उपदेशों से, मन-आसक्ति नष्ट करे॥
संत पुरुष का यही है लक्षण, चित्त सुधर्म लगा रहना।
उनके हृदय में शान्ति का, अगाध समुद्र लहराना॥
सदा सर्वदा सम रूप दिखना, भगवान के दर्शन करते।
सर्दी गर्मी सुख दुःख में, सदा ये एक रस रहते॥

अहंकार लेश मात्र नहीं रहना, किसी में ममता नहीं रखते।
दैहिक मानसिक शारीरिक, कोई परिग्रह नहीं रखते ॥ दो

संतों के पास सदा सर्वदा, लीला कथा हुआ करती।
जो मनुष्य को परम हितकारी, पाप नाश सारे को डालती ॥
जो श्रद्धा से मेरी लीला कथा, प्रेम का गान अनुमोदन।
मेरी भक्ति प्राप्त करलेते, हो जाते के मेरे प्रायण ॥
उद्धव जी मैं अनन्त अचिन्त्य, गुण गणों का आश्रय हूँ।
मेरा स्वरूप विशुद्ध आनन्द, मैं साक्षात परब्रह्म हूँ ॥ दोहा

उद्धव वह नहीं संत ही गया, जिसे मेरी भक्ति मिल गई।
भक्ति पाने के पश्चात, और कुछ पाना शेष नहीं ॥
जिन्होंने संत शरण ग्रहण की, उद्धव उनकी गति हीनका।
कर्म जड़ता अज्ञान, से निवृत्त होजाते सर्वथा ॥
भला जिसने अग्नि भगवान का आश्रय ले रखा।
उसे शीत भय अन्धकार, का दुख कैसे होसकता ॥
जो संसार सागर में डूबे, उनका आश्रय ब्रह्मवेत्ता।
जैसे जल में डूब रहे, लोगों के लिए है नौका।
प्यारे उद्धव जैसे प्राणियों हेतु अन्न होता प्राण रक्षक।
जैसे मेघ ही दीन दुखियों, का है परम रक्षक उद्धव ॥
जैसे मनुष्य के लिए परलोक में, धर्म ही पूंजी उद्धवजी। दोहा
जैसे ही संसार भयभीत लोगों को, संत जन आश्रय उद्धवजी ॥
जैसे सूर्य उदय होकर करता, सारे जगत को नेत्र दान।
जैसे ही संत पुरुष मनन को, करता अन्तर्दृष्टि दान ॥

प्रिय उद्धव पुरुरवा ने जब छोड़ा, उर्वशी आसक्ति बन्धन। दोहा
तब आत्माराम स्वच्छन्द रूप, करने लगे पृथ्वी पर विचरण ॥

सत्ताईसवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद् भागवत का सत्ताईसवां अध्याय प्रारम्भ होता है।
जिसमें श्रीकृष्ण सुनाते उद्धव को क्रियायोग भक्तिन ॥

उद्धवजी बोले - हे भगवन् भक्त करें जो पूजा अर्चन।
आप उस आराधन रूप क्रियायोग का कीजिए वर्णन ॥1॥
नारदजी व्यासजी बृहस्पति सभी का है ये कहना।
क्रियायोग आपकी आराधना ही है परम कल्याण साधना ॥
यह क्रियायोग पहले पहले आपके मुख से निकला था।
जिसे ब्रह्माजी ने और महादेव ने ग्रहण किया था ॥
फिर ब्रह्माजी ने अपने पुत्र भृगु आदि को दिया।
महादेव ने पार्वती जी को इसका उपदेश दिया ॥2॥

क्रियायोग सभी वर्ण आश्रम के लिए कल्याणकारी परम।
स्त्री शूद्रादि के लिए भी यही सबसे श्रेष्ठ साधन ॥
आप सभी देवताओं के भी ईश्वर हैं आप भक्त वत्सल।
कर्मबन्धन से मुक्त करें, मर्म बतलायें इसका विधि बल ॥3॥

श्रीकृष्ण बोले - उद्धवजी, कर्मकाण्ड की नहीं कोई सीमा।
इसलिए अल्प श्रुतिपथ-क्रम से, विधिपूर्वक वर्णन करता ॥
वैदिक तान्त्रिक और मिश्रित, तीनविध होता मेरा पूजन।
उसी विधि से करे पूजा, भक्त के जो हो अनुकूलन ॥
पहले अपने अधिकारानुसार शास्त्रोक्त विधि से समय पर।
द्विजत्व प्राप्त करे यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत होकर ॥4॥
अग्नि अग्निपूर्वक सामग्री द्वारा, मूर्ति वेद आगम सूर्य में।
जल हृदय या ब्राह्मण में करे आराधना चाहे किसी में ॥

प्रातःकाल दातुन स्नान, दैंदिक नैत्यिक मन्त्रों से। दो।
मिट्टी अहम का लोप करें, और फिर पुनः स्नान करे।।

फिर करे नित्यकर्म सभी, वेदोक्त स्तवन वन्दन।
फिर दैंदिक नैत्यिक विधिसे, कर्म बन्धन छुड़ाने करे पूजन।।

आठ-प्रकार की मेरी मूर्ति, पत्थर की चित्र सभी।
लड़की, धातु, मिट्टी चन्दन, चित्र, बालु महिमामयी।।
चल और अचल भेद से, दो प्रकार की प्रतिमा हैं।
मुझमें विद्यमान का मन्दिर है, इतना समझिये उद्धव जी।।

अचल प्रतिमा पूजन में प्रतिदिन, ना करें आवाहन विसर्जन। } दो ६
चल-प्रतिमा में विकल्प है, चाहे करे ना करे विसर्जन।।

किन्तु बालुमयी प्रतिमाको, रोज करे आवाहन विसर्जन।
मिट्टी चन्दन प्रतिमा का केवल करे मात्र मार्जन।।
प्रसिद्ध पदार्थों से प्रतिमा में की जाती मेरी पूजा।
किन्तु निष्काम भक्त केवल, भावना से करें मेरी पूजा।।

स्नान करके आभूषण उपयोगी, पत्थर धातु प्रतिमा पूजन में। } दो ६
मन्त्र के प्रधान देव पूजा, बालु मिट्टी प्रतिमा पूजन में।।
घृत मिश्रित हवन सामग्री, यदि करना अग्नि में पूजन।
अर्घदान उपरुधान छत्र, यदि करना सूर्य का पूजन।।
जब कोई भक्त हार्दिक भाव से, नर्पण कर जल चढ़ाता।
मैं प्रेम से स्वीकार करता, और विशेष प्रसन्न हो जाता।।
यदि कोई कुभक्त सामग्री चढ़ाये तो भी मैं प्रसन्न ना होता। दो ६
भक्त श्रद्धा से जल भी चढ़ाये, मैं भाव भूखा प्रसन्न हो जाता।।

अब सुनो पूजा विधि उद्धव जी, सामग्री एकत्रित की जाये।
आसन भाव रहे पूर्व और, इस प्रकार कुछ विचार।।

दर्भ का उत्तर मुँह करके सुखासन से आसन पर बैठ जाए ।
पवित्रता आचमन को सामने रखें पूजा कार्य प्रारम्भ किया जाए ।

पहले विधिपूर्वक अंगन्यास और करन्यास कर लें ।
मूर्ति में मन्त्र-न्यास करे पहली सामग्री को शोध लें ।
फिर जल से भरे कलश की पूजा गन्ध पुष्प से करे ।
प्रक्षेण पात्र के जल से सामग्री शरीर प्रोक्षण करे ।
पाद्य, अर्घ्य आचमन को तीन पात्रों के जल डालें ।
और फिर उनमें पूजा पद्धति अनुसार सामग्री डालें ।

पाद्य पात्र में श्यामक, दूब, कमल चन्दन तुलसी दल डालें ।
अर्घ्य पात्र में गन्ध पुष्प, अक्षत जौ कुश दूब तिल डालें ।
और आचमन पात्र में डालें जायफल लौंग आदि ।
मैं नमः सभी तीनों पात्रों में क्या क्या डालें बताइये ।
तीनों पात्रों को हृदयमन्त्र शिरो शिखा मन्त्र करे अभिमन्त्रित ।
और अन्त में गायत्री मन्त्र से तीनों पात्रों को करें अभिमन्त्रित ।

फिर आकाश से प्राण वायु अग्नि से अग्नि शुद्ध करे ।
हृदय में सूक्ष्म दीप शिखा मेरी जीवन कला ध्यान करे ।
बड़े बड़े नासिकुनि सिंह, अकार उकार मकार बिन्दु नाद ।
करते जीवन कला की ध्यान, ॐकार पंच कलाओं के आदि ।
जीवन कला के तेज से, जल अन्तःकरण भर जाये ।
मन मानसिक उपचारों से मन ही मन पूजा की जाये ।
फिर मेरा आवाहन करके, प्रतिमा में स्थापना करे ।
फिर मन्त्रों के द्वारा अंगन्यास, कर उसमें मेरी पूजा करे ।

उद्धव जी मेरे आसन में करे, धर्म आदि गुणों की आवना ।
और विमला आदि सभी, शक्तियों की करें आवना ।

अधर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य, चार पाये आसन सोना पर।
अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य उनके चार दिशाओं पर॥
सत रज तम रूप बनी हुई उन्हें जी पीठ तीन पटरियां।
उसपर निर्मला ज्ञाना, सर्वज्ञा, योगा आदि नौ शक्तियां॥ दो।
है उस आसन पर एक, अष्ट दल कमल उन्हें जी।
उसकी कर्णिका पीली पीली के कर उन्हें जी॥
ऐसी भावना कर पाद्य आचमन, अर्घ्य उपचार प्रस्तुत करे।
ओम सोहं हिरण्मै हेन मेरी, मैं दिक नाम्नक पूजा करे॥
सुदर्शन, पांचजन्य, कौमोदकी, नंदा, खड्ग अनुत्तम हल मूसल।
पूजा करे आठ आयुधों की, आठ दिशाओं हर पल॥ दो।
और श्रीवत्स चिन्ह की, माला तथा कौस्तुभमणि की।
वक्षस्थल पर प्रभास्वान, पूजन करे उन्हें जी॥
नन्द सुनन्द प्रचंड चंड, बल, महाबल कुमुद कुमुदेक्षण।
करे पूजा आठ दिशाओं, उन्हें इनकी आठ पार्षद॥ दो।
दुर्गा विनायक, व्यास विष्वक्सेन, चार कोने स्थापित करे।
गरुड़ की सामने की ओर, उन्हें जी पूजा करे॥
वामी ओर गुरु की ओर, यथाक्रम इन्द्रादि दिशाओं में।
इन्द्रादि आठ लोकपालों की, विधिवत स्थापना करे॥
फिर प्रोक्षण अर्घ्यदान आदि, क्रम से पूजन करना चाहिए। दो।
सम्भव हो तो चन्दन केसर से, पुनः स्नान कराना चाहिए॥ दो।
स्नान करते समय उन्हें जी सामगायन का करे पाठ।
उनमें से एक थे हैं उन्हें, सुवर्ण पर्म स्वर्ण पर्मानुवाक॥

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः इत्यादि और जिन ने पुरुषरीकाक्ष ।
इन्द्र नरो ने मधिमन्त हवन्त इत्यादि मन्त्रों का पाठ ॥

मेरा भक्त वस्त्र यज्ञोपवीत आभूषण माला गन्ध पुष्प ।
चन्दनादि से प्रेम पूर्वक करे मेरा शृंगार संभाल ॥
तब उपासक पूजा के साथ पाद्य आचमन चन्दन अक्षत ।
पुष्प धूप दीप आदि सामग्रियां करे समर्पित ॥
यदि हो सके तो गुड़ खीर घृत पूड़ी पूरण लड्डू का ।
हुआ दही और दाल भेंचे लगाये व्यंजनों का ।
प्रभु विग्रह को दुग्धेन उबटन पंचामृत स्नान कराये ।
लेप कराये भोग लगाये पर्वों पर नृत्य गान कराये ॥
पूजा पश्चात शास्त्रोक्त विधि मुख में अग्नि करे स्थापित ।
हाथ हवन अग्नि प्रज्वलित फिर उसे कर दे एकत्रित ॥

वेदी के चारों ओर उद्धव बीज बीज कुश बिछाकर ।
स्वाधक मन्त्र पढ़ते हुआ जल छिड़कता रहे उनपर ॥
फिर विधि पूर्वक सामिधाओं का अन्वाधान कर्म करे ।
फिर उत्तर आज्य स्रुग्वी स्रुव जल से विधिवत प्रोक्षण करे ॥

तदनन्तर अग्नि में मेरा इस प्रकार ध्यान करे जैसे ।
मेरी मूर्ति दमक रही तपाये हुए सोने के जैसे ॥
रोमरोम से दिव्य ज्योति बहे भुजाएं शोभायमान ।
उन भुजाओं में शंख चक्र गदा पद्म विराजमान ॥
कमल की केसर के समान वस्त्र फहरा रहा पीला पीला ।
सिर पे मुकुट कलाई कंगन बाजूबंद रहे झिलमिला ॥
वक्षस्थल श्रीवत्स चिन्ह कौस्तुभमणि जगमगा रही ।
और कमर में करधनी घुटनों तक वनमाल लटक रही ॥

फिर पूजा करनी-चाहिए, अग्नि में मूर्ति का ध्यान कर
आज्यभाग आधार दोनों आहुति, स्विष्टकृत आहुति दे।
ॐ नमो नारायणाय नमः, सोलह मन्त्रों से हवन करे।
चर्चादि देवताओं के लिए भी मन्त्रों से हवन आहुति दे।
फिर पार्षदों को आठों दिशाओं, हवन कर्मांग बलि दे।
तदनन्तर प्रतिमा सम्मुख जाके, नारायण का स्मरण करे।
फिर भगवान को कराये आचमन, प्रसाद निवेदन करे।
फिर इष्ट देव को ताम्बूल आदि, और पुष्पांजलि समर्पित करे।

मेरी लीला गावे, नर्तन करे, और उनका अभिनय करे।
और यह सब करते समय, प्रेमोन्मत्त हो नाचने लगे।
तदनन्तर छोटे बड़े स्तव और, स्तोत्रों से मेरी स्तुति करे।
कि भगवान आप प्रसन्न हों, मुझे कृपा से सराबोर करे।
फिर दण्डवत कर चरण पकड़, मुझे इस प्रकार कहें।
कि भगवन इस संसार सागर में, डूब जा रहा हूँ मैं।
भगवन-मृत्युरूप भयानक मगर, कर रहा मेरा पीछा।
डरकर आया शरण आपकी, कृपया कीजिए मेरी रक्षा।
स्तुति कर समर्पित पुष्प माला, आदर से सिर पर रखे।
और उसे मेरा दिव्य दूत, पावन प्रसाद समझे।
फिर करे भावना ऐसी कि प्रतिमा में से ज्योति निकली
मेरे हृदयस्थ लीन हो गई, उद्धव जी विसर्जन विधि।
उद्धव जी मेरी पूजा करे, प्रतिमा आदि से जल में बहा दे।
क्योंकि मैं सभी हृदय स्थित, मैं हर प्राणियों में बसा।
जो मनुष्य मेरी नाम्नात्मक, क्रियायोग से करे पूजा।
वह सभी लोकों में पूजनीय, अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता।
यदि सम्भव हो तो मन्दिर बनाये, मेरी प्रतिमा स्थापित करे।
सुन्दर सुन्दर फूल लगाये, उनकी भी सेवा करे।

जो लगातार पूजा के लिए रखेन, बाजार गांव करे सम्मिलित। } ६।
उसे मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है निश्चित।।

मूर्ति प्रतिष्ठा से पूर्व जी राज मन्दिर निर्माण से त्रिलोक।।
पूजा व्यवस्था से पूर्व मेरी सामान्य मिलती सीखने से।।
उद्धव जी जो निष्कामभाव मेरी पूजा नहीं कर ना।
भक्ति भोग प्राप्त ले जाना, स्वयं मुझे प्राप्त कर लेना।।
जो अपनी ही जीविका को लेने वाले से हर लेना।
उद्धव जी वह कर्मों वर्ण, विहीन का कीड़ा होना।।
जो हरण में आसक्तिदार, प्रेरणा को अनुमोदन करने। } ७।
वही उसी तरह, समान फल आसक्तिदार होना।।

उन्नीसवां अध्याय

अब सुनो श्रीमद भागवत का उन्नीसवां अध्याय सारगर्भित कथन।
जिसमें भगवान श्रीकृष्ण ने, दी भक्ति परमार्थ निरूपण।।
श्री कृष्ण बोले- उद्धव जी, व्यवहार में पुरुष और प्रकृति।
दृष्टा और दृश्य भेद से, दो प्रकार जाना जाने पड़े यथादि।।
परमार्थ दृष्टि से ये सब, अधिष्ठान स्वरूप ही है यथार्थ।
अतः किसी के प्रति चोरभावना, ना करे निन्दा ना ही स्तुति।।
जो पुरुष दूसरों के आचरण से प्रशंसा या निन्दा करते। } ८।
उद्धव जी वे अपने यथार्थ, परमार्थ साधन च्युत हो जाते।।
क्योंकि साधन सत्संग बुद्धि का, नित्य करना उसके प्रति।
प्रशंसा निन्दा सत्यता से, प्रेम को और दृढ़ करती।।
इन्द्रियों राजस अहंकार कार्य, जब ही नियंत्रित हो जाती।
मनजीत चेतना शून्य हो जाना, शरीर की स्मृति ना रहती।।
यदि मन वचना को वह, स्वप्न दृश्य सम मत करना। } ९।
यदि वो लीन हो गया तो, मृत्यु सम सुषुप्ति लीन ना जाना।।